मोरारजी देसाई

राष्ट्रीय जीवनचरित

मोरारजी देसाई

यशवंत दोशी

अनुवाद
रामजीभाई सवाणी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2086-6

पहला तंस्करण : 1997 (*शक 1918*)

MORARJI DESAI *(Hindi)*

रु. 32.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

प्राक्कथन सात

1. बचपन और शिक्षा 1
2. सरकारी नौकरी में 10
3. राजनीति में प्रवेश 24
4. मुंबई मंत्रिपरिषद में 32
5. आजादी की लड़ाई में 41
6. मुंबई के गृहमंत्री 48
7. मुंबई के मुख्यमंत्री 61
8. केंद्रीय मंत्रिपरिषद में 69
9. भारत के प्रधानमंत्री 81
10. जीवन के अंतिम वर्ष 84

प्राक्कथन

मोरारजीभाई देसाई जिस तरह के विस्तृत चरित्रग्रंथ के हकदार हैं, वैसा ही चरित्रग्रंथ लिखने का एक अच्छा मौका खुद उठकर मेरे सामने आया, फिर भी मैं उसको स्वीकार नहीं कर सका, इस बात का अफसोस मुझे हमेशा के लिए रहेगा। उस ग्रंथ निर्माण के लिए मुझे उपलब्ध कराई गई सामग्री के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति ने किताब लिख डाली लेकिन वह विस्तृत जीवनचरित न बन सकी। जिससे उस तरह के अपेक्षित चरित्रग्रंथ की कमी आज भी खल रही है। मोरारजीभाई की आत्मकथा 'मेरा जीवन वृत्तांत' तो सुलभ है ही, लेकिन आत्मकथा चरित्रग्रंथ का स्थान नहीं ले सकती।

गांधी विचार और गांधी जीवन शैली को अधिक दृढ़ता से अपनाने वाले बहुत कम राजनीतिक हुए हैं, उनमें मोरारजीभाई देसाई को हम आगे की पंक्ति में रख सकते हैं।

उन्होंने 12 वर्ष सरकारी नौकरी में, 12 वर्ष मुंबई राज्य में मंत्री के रूप में और 12 वर्ष केंद्रीय मंत्रिमंडल में काम किया। यह उनकी बदकिस्मती थी कि दो दो बार सर्वोच्च सत्ता में आने के बावजूद जो कार्य उन्होंने करने चाहे थे उन्हें फिर भी नहीं कर पाए। 1952 से 1956 तक वे मुंबई राज्य के मुख्यमंत्री हुए उस समय संयुक्त महाराष्ट्र और महागुजरात के चले आंदोलनों में उलझना पड़ा और फिर 1977-79 के दौरान जब वे देश के प्रधानमंत्री बने तब वामपंथी, दक्षिणपंथी और मध्यस्थ पार्टियों को एकजुट बनाए रखने में व्यस्त रहे। सत्ता में रहते हुए उनके हाथों से जो कुछ अच्छे कार्य हुए, वे दोनों वक्त उनके दूसरे स्थान के मंत्री के रूप में ही हुए—यानी जब वे मुंबई राज्य के राजस्वमंत्री और गृहमंत्री थे तब और केंद्रीय मंत्रिपरिषद में व्यापार-उद्योगमंत्री, वित्तमंत्री और उपप्रधानमंत्री थे।

सरकारी नौकरी, राजनीतिक या प्रशासनिक कार्य में मोरारजीभाई अपनी कोई खास इच्छा से या इरादतन नहीं जुड़े थे। पढ़ाई के बाद वे प्राध्यापक बनना चाहते थे, लेकिन संयोग ही उन्हें डिप्टी कलक्टर की सरकारी नौकरी में ले आया। जब 12 साल की नौकरी के बाद उन्होंने त्यागपत्र दिया तो उसके बाद उनकी इच्छा गांधी जी के आश्रम में रहकर गांधी विचार के अनुरूप जीवन जीने की थी, उसके

लिए उन्होंने प्रयत्न भी किए, लेकिन इस बार भी संयोगों ने उनकी इच्छाओं को विफल कर दिया और वे राजनीति में आ गए। मुंबई के मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी छोड़ने के बाद वे कुछ रचनात्मक कार्य करना चाहते थे, लेकिन प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने उनको केंद्रीय मंत्रिपरिषद में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली बुला लिया। उनके जीवन में इस तरह के अनेक मोड़ आए थे जिसके कारण उनका जीवन अपनी इच्छा और खयालों से विपरीत दिशा में गुजरा।

किसी भी खोजी लेखक को मोरारजीभाई का चरित्रलेखन एक चुनौती देने वाला है, जिसको लेकर अनेक चर्चा योग्य या विवादास्पद मुद्दे उठ सकते हैं। और जिनके बारे में इन मुद्दों का निराकरण, अनुसंधान व चिंतन के बिना नहीं हो सकता, ऐसा व्यक्ति, चरित्र-लेखकों को अवश्य आकर्षित करेगा।

अबकी बार तो मुझे जो भी मर्यादित समय दिया गया था, उस सीमित अवधि में ही जिन्हें लिखा जा सके, ऐसी छांटी गई छुट-पुट घटनाओं से वर्णित जीवनकथा यहां लिखी गई है। जिससे मोरारजीभाई की भले कम ही, लेकिन एक यथार्थ प्रतिमा पाठक के दिमाग में जरूर बन पाएगी ऐसी आशा करता हूं।

–यशवंत दोशी

मुंबई
फरवरी 4, 1997

1

बचपन और शिक्षा

श्री मोरारजी देसाई की जीवन कथा एक कठिन परिश्रमयुक्त विकास की कथा है, मढ़ी से महल तक के लंबे सफर की कहानी है। उनके विकास का इतिहास कोई चमत्कारिक कथा नहीं है। अनवरत पुरुषार्थ से प्राप्त सिद्धि की कथा है।

जीवन भर वे विपरीत हालात से लोहा लेते रहे और विजयी रहे। एक साधारण स्थिति वाले शिक्षक का पुत्र भारत के प्रधानमंत्री पद तक पहुंचा। आजाद भारत के वे चौथे प्रधानमंत्री थे। उनकी सफलता की बुनियाद में आत्मविश्वास और कर्तव्यनिष्ठा विद्यमान थी। आत्मविश्वास से दृढ़ता उत्पन्न हुई तथा कर्तव्यनिष्ठा से कार्यकुशलता। उनका चारित्र्य ईश्वर श्रद्धा और नीति निष्ठा से पनपा था। ईश्वर श्रद्धा से निर्भयता पैदा हुई और नीति निष्ठा ने जीवन को सही दिशा प्रदान की।

मोरारजीभाई के पिताश्री रणछोड़जी नागरजी देसाई आजीवन शिक्षक रहे। वे वलसाड़ के अनाविल ब्राह्मण थे। वे भी अन्य अनाविलों की तरह आर्थिक रूप से संपन्न नहीं थे, लेकिन विद्याप्रेमी और संस्कारी थे। वे बड़ी मुश्किल से इंटरमीडिएट तक पढ़ पाए, फिर भावनगर रियासत के शिक्षा विभाग में नौकरी मिलने पर पच्चीस वर्ष तक उन्होंने शिक्षक के रूप में काम किया। इस नौकरी के कारण उनको कुण्डला, महुआ और भावनगर में रहना पड़ा। बरसों तक वे परिवार से दूर अकेले रहे थे।

रणछोड़जी देसाई देखने में ऊंचे और प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनका व्यक्तित्व सबको प्रभावित करनेवाला था। वे निहायत ईमानदार और नीतिवान थे। उनका चरित्र अनुकरणीय था।

वे नियमपालन और अनुशासन पर अधिक जोर देते थे। समय की पाबंदी के लिए वे अति आग्रही थे। स्वीकृत सिद्धांतों के प्रति वे दृढ़ता से लगे रहते थे।

वे मितभाषी जरूर थे, लेकिन सही बात स्पष्ट शब्दों में कहने से हिचकिचाते नहीं थे। वे कभी किसी की खुशामद नहीं करते थे।

ऐसे गुणों के कारण रणछोड़जी देसाई सख्त स्वभाव के माने जाते थे, लेकिन

अपने छात्रों के प्रति वे अत्यंत प्रेम रखते थे। उनके चारित्र्य निर्माण में भी वे गहरी दिलचस्पी रखते थे। वे कभी भी उनकी पिटाई नहीं करते थे और न ही डांटते थे। वे उपदेश देने के बजाय अपने व्यवहार से ही गहरा प्रभाव छोड़ते थे। छात्रों एवं उनके अभिभावकों के लिए वे सलाह लेने का माध्यम थे। गांव के अन्य लोग भी उनसे सलाह लेते रहते थे।

वे आग्रह करते थे कि सभी चीजें व्यवस्थित हों। घर में अगर कोई चीज अपनी निर्धारित जगह पर नहीं है, तो वे खुद ही उठाकर उचित स्थान पर रख देते थे। दूसरों से कहने के बजाय वे खुद ही काम करना पसंद करते थे।

रणछोड़जी की आर्थिक स्थिति हमेशा कमजोर रहने पर भी वे किसी से शिकायत नहीं करते थे। उनकी मनोवृत्ति थी कि ईश्वर जिस हाल में रखे, उसी हाल में संतोष रखें। जिसके कारण उनके मन में कभी भी विषाद पैदा नहीं हुआ। वे हमेशा प्रसन्नचित्त ही रहे। उन्होंने वेतनवृद्धि के लिए अपनी ओर से कभी भी मांग नहीं की। अपने आप जो कुछ भी मिला उसको स्वीकार किया। किसी से कभी कुछ नहीं मांगा। सादगी और मितव्ययता उनके जीवन में समा चुकी थी। रणछोड़जी की पहली पत्नी काशीबहन ने सास के जुल्म से त्रस्त होकर आत्महत्या कर ली थी। उनकी दूसरी शादी भदेली गांव के गोपालजी वसन जी देसाई की जाज्वल्यमान एवं प्रतिभावान पुत्री मणिबहन से हुई थी।

रणछोड़जी की ईमानदारी ऐसी थी कि उन्होंने रिश्ता होने से पहले ही गोपालजी देसाई को काशीबहन की आत्महत्या की बात बिना छिपाए स्पष्ट शब्दों में बता दी। फिर आगे कहा, "अगर आपकी पुत्री मेरी मां को बरदाश्त कर सकती है, तो मैं तैयार हूं।" गोपालजी ने कहा, "मैंने उन सबके बारे में सोच लिया है, मुझे आपकी विवेकबुद्धि पर भरोसा है।"

गोपालजी देसाई बड़े सिद्धांतवादी थे। जो भी निर्णय करते, उस पर दृढ़ता से अटल रहते थे। उनकी दृढ़ता करीब करीब जिद का रूप ले लेती थी। "यही करूंगा, वरना जहर खा लूंगा।" ऐसा बार बार कहा करते थे अतः ग्रामवासी उनको "गोपालजी जहर खाऊं" नाम से पहचानते थे।

गोपालजी देसाई ने स्व प्रयत्न से समृद्धि प्राप्त की थी। वे खेती करते थे तथा अनाज का व्यापार करते थे। घर पर दूध के लिए सात-आठ गायें-भैंसें रखते थे। शुरू में उनकी आर्थिक हालत कमजोर थी, लेकिन मणिबहन के जन्म के बाद समृद्धि आई, इसीलिए मणिबहन के ऊपर उन्हें विशेष स्नेह था। मणिबहन उनको लक्ष्मीजी का अवतार लगती थीं।

मणिबहन भी ऊंची और सुंदर थीं। वे पांचवीं कक्षा तक ही पढ़ी थीं। रणछोड़जी और मणिबहन की सुंदर जोड़ी देखकर किसी को भी ईर्ष्या आ सकती थी।

अपने पति की आर्थिक हालत कमजोर होने पर भी मणिबहन गर्व से अपना संसार चलाती थीं। वे किसी और की समृद्धि देखकर अपने को कभी हीन महसूस नहीं करती थीं।

रणछोड़जी और मणिबहन के सुखी और प्रसन्न दांपत्य जीवन का प्रभाव उनके बच्चों के लिए अत्यंत लाभदायक रहा। श्री मोरारजीभाई ने उसके बारे में कहा है, "मेरे पिताजी कभी भी ऊंची आवाज में नहीं बोलते थे। उनको मैंने अपनी माताजी के साथ लड़ाई करते हुए कभी नहीं देखा। हमारे माता-पिता के बीच जो आत्मीयता थी उसका प्रभाव हमारे दिल-दिमाग पर बड़ा गहरा पड़ा है। हमारे आसपास प्रसन्नता और संवाद का माहौल था। ऐसे माता-पिता को पाने के लिए मैं अपने आपको अत्यंत भाग्यवान समझता हूं।"

मोरारजी मणिबहन के बड़े पुत्र थे। उनका जन्म अपने ननिहाल भदेली में 29 फरवरी 1896 को हुआ था।

अपनी प्रिय पुत्री मणिबहन के प्रथम पुत्र के जन्म से गोपालजी देसाई को अत्यंत हर्ष हुआ। उन्होंने मोरारजी का जन्म बड़े धूमधाम से मनाया। बालक मोरारजी किसी को भी देखते ही प्रिय लगें ऐसे आकर्षक और हंसमुख थे। गोपालजी देसाई ने तो बच्चे की हस्तरेखा देखकर ही भविष्यवाणी थी "यह बच्चा अपना और अपने परिवार का नाम रोशन करेगा।"

उसके बाद मोरारजी जब दस वर्ष की उम्र के हुए तब उनके पिता रणछोड़जी ने कहा था, "यह मोरारजी भविष्य में महान बनेगा। आप मेरी भविष्यवाणी को ताम्रपत्र पर लिख सकते हैं।"

मोरारजी के बड़े मामा हरिभाई गोपालजी देसाई भदेली गांव में सबसे पहले ग्रेजुएट हुए थे। वे राजस्व विभाग में तहसीलदार के पद तक पहुंचे थे। उनको भी मोरारजी से विशेष प्यार था। उन्होंने मोरारजी का नाम 'देव' रखा था। उन्होंने भी भविष्यवाणी की थी कि हमारा यह देव गोपालजी देसाई का नाम रोशन करेगा।

चार गांव की पाठशालाओं में

प्राथमिक शिक्षा के दौरान मोरारजी देसाई को चार गांवों की पांच पाठशालाओं में पढ़ना पड़ा। मोरारजी के पिताजी की नौकरी भावनगर रियासत में थी इसलिए माता मणिबहन आमतौर पर भदेली गांव में अपने मैके में ही रहती थीं। मोरारजी की शिक्षा का प्रारंभ यहीं हुआ।

मोरारजी जब प्राथमिक विद्यालय की तीसरी कक्षा में पढ़ रहे थे तब एक बार उन्होंने पिता के साथ रहकर पढ़ने की जिद की। अनुशासन के आग्रही एवं सख्त स्वभाव के माने जाने वाले पिताश्री रणछोड़जी के दिल में मोरारजी के प्रति अत्यंत नरम भावना थी। बालक की जिद के आगे झुककर वे उन्हें अपने साथ

कुण्डला ले गए।

रणछोड़जी कुण्डला में चौथी कक्षा तक के मिडिल विद्यालय के प्रधानाचार्य थे। उस समय वे वहां पर अकेले रहते थे, फिर भी मोरारजी को अपने साथ लाकर अत्यंत प्रेमपूर्वक उसकी देखभाल की।

जब मोरारजी कुण्डला में अपने पिता के साथ रह रहे थे, उस समय की एक घटना है। घर का नौकर मोरारजी को पाठशाला से घर ले ज़ाया करता था। एक बार नौकर को आने में देर हुई इसलिए मुख्य शिक्षक ने मोरारजी को अपने पास बिठाए रखा। नौकर ने देर से आने की अपनी गलती को छिपाने के लिए घर जाकर रणछोड़जी से कहा कि बच्चा कहीं घूमने के लिए निकल गया है। जब देर तक नौकर मोरारजी को लेने के लिए नहीं पहुंचा तो मुख्य अध्यापक ने अपने नौकर के साथ मोरारजी को घर भेजा। पिता ने पुत्र को आवारा समझकर बहुत पिटाई की। मोरारजी को बुखार आ गया। अगले दिन बुखार के कारण मोरारजी विद्यालय नहीं जा सके। शिक्षक देखने के लिए जब घर गए तो सारी बातें साफ हो गईं, तथा पिता को बहुत अफसोस हुआ। पिता को पुत्र के प्रति अपार प्रेम था, तथा पुत्र को पिता के प्रति गहरा आदर था। पिता द्वारा दी गई सजा के बावजूद उनके मन में पिता के प्रति आदरभाव कम होने के बजाय बढ़ गया।

भदेली एवं कुण्डला के अलावा मोरारजी को महुआ और वलसाड़ के विद्यालयों में भी पढ़ना पड़ा। अंत में मिडिल की चौथी कक्षा में वलसाड़ के बाई आवाबाई हाइस्कूल में प्रवेश लिया तथा मैट्रिक तक वहां पढ़े। जिला भर में श्रेष्ठ विद्यालय के रूप में उसकी प्रतिष्ठा थी।

भदेली से मोरारजी एवं अन्य आठ-दस बच्चे रोज तीन मील चलकर वलसाड़ जाते थे तथा तीन मील चलकर वापिस लौटते थे। बीच में औरंगा नदी पड़ती थी। समुद्र के समीप होने के कारण ज्वार का पानी नदी में आ जाता था, इसलिए जाते या आते समय एक बार नौका में बैठकर नदी को पार करना पड़ता था। बरसात के दिनों में कई बार तो नदी में इतना पानी रहता था कि कभी कभी तो आते-जाते दोनों ही बार नौका से नदी को पार करना पड़ता था।

रोज छह मील चलने के कारण मोरारजी का शरीर कस गया। ननिहाल में दुधारू पशु होने के कारण उसका कामकाज भी करना पड़ता था। तेरह से सोलह वर्ष की आयु के दौरान तो हर तीसरे दिन दही मथने का काम भी उन्हें ही करना पड़ता था। उस काम से उनके हाथ और पैर मजबूत हुए, तथा दूध, दही, मक्खन, घी जैसी चीजों को खाने से उनका शरीर पुष्ट हुआ।

बिना कारण और बिना छुट्टी लिए पाठशाला में अनुपस्थित रहने की आदत मोरारजी में नहीं थी। अन्य बच्चे बिना वजह नागा करके घूमने-फिरने में समय नष्ट करते थे, मोरारजी को कभी ऐसी इच्छा ही नहीं होती थी। पाठशाला में नियमित

रूप से जाने तथा शिक्षक जो पढ़ाए उसमें पूरा पूरा ध्यान देने की आदत उनमें शुरू से ही थी।

अन्य बच्चों को अपने अभिभावकों की ओर से खर्च के लिए पैसे मिलते थे, मोरारजी को उस तरह पैसे नहीं मिलते थे, फिर भी उन्हें कभी उन बच्चों से ईर्ष्या नहीं होती थी। बाजार से कुछ खरीदने की उनकी कभी इच्छा ही नहीं होती थी।

उनको तरह तरह के खेल खेलने का बड़ा शौक था। क्रिकेट, गुल्ली-डंडा, आटापाटा, कबड्डी आदि खेल उन्हें पसंद थे। ड्रिल उन्हें नापसंद थी, इसलिए उस समय वे कहीं भाग जाते थे। खेल में स्पर्धा उन्हें पसंद नहीं थी। पाठशाला में आयोजित खेल स्पर्धा में वे हिस्सा नहीं लेते थे, स्पर्धा में हिस्सा लेकर पुरस्कार पाने की इच्छा उनमें कभी नहीं होती थी। वे खेल केवल आनंद के लिए ही खेलते थे। पाठशाला में शिक्षक जब पढ़ाते थे, तब वे इतने ध्यान से सुनते थे कि फिर उन्हें वह पाठ घर आकर पढ़ने की जरूरत ही नहीं रहती थी। मैट्रिक तक उन्होंने पढ़ने के बजाय खेल में विशेष ध्यान दिया।

बचपन में मोरारजी का कद छोटा था, पूरी कक्षा में वे अन्य बच्चों से कम ऊंचाई के थे। मैट्रिक तक उनकी ऊंचाई कम ही रही।

बचपन में मोरारजी आदत से ही डरपोक थे। घर की ऊपरी मंजिल तक अकेले जाने में डरते थे। किसी कमरे में अकेले सोने से डरते थे। किसी से लड़ाई-झगड़ा करने की आदत ही नहीं थी। किसी से लड़ाई होने की स्थिति में वे दब जाते थे और जो कुछ होता था उसे चुपचाप सहन कर लेते थे।

फिर भी खेलकूद में वे दक्ष थे, तथा पढ़ाई में भी हमेशा अव्वल आते थे। वे अन्य अनाविल बच्चों की तरह गालियां नहीं बोलते थे, और न ही अपनी उपस्थिति में अन्य को गाली बोलने देते थे, इसलिए सभी छात्र और अध्यापक उनके प्रति आदर भाव रखते और सम्मान देते थे।

खेलकूद में अधिक दिलचस्पी रखने के कारण उनका शरीर मजबूत अवश्य हुआ लेकिन एक खराब परिणाम यह भी रहा कि उनको पढ़ने की आदत नहीं रही।

उस समय तक उन्होंने कहानियों की कुछ किताबों के अलावा कुछ नहीं पढ़ा था। संस्कृत पढ़ने के समय उन्हें 'पंचतंत्र' की कहानियां अधिक पसंद आईं। बरसात के दिनों में बूढ़ी औरतें उनसे रामायण और महाभारत का पाठ कराती थीं। इस तरह उन्होंने ये दोनों ग्रंथ दो दो बार पढ़ लिए थे। नीति विषयक उनके विचार इन ग्रंथों के कारण विकसित हुए और इससे उनमें धार्मिक भावना जागृत हुई।

1905 में बंगभंग के कारण देशभर में आंदोलन शुरू हुआ, उस समय उनकी आयु 10 वर्ष की थी, इतनी छोटी आयु में उन्होंने हमेशा के लिए चाय का त्याग किया। उसके बाद जब लोकमान्य तिलक को छह वर्ष कैद की सजा हुई तब उन्होंने

एक सार्वजनिक सभा में अन्य लोगों के साथ स्वदेशी का व्रत धारण किया। दोनों व्रत उन्होंने मरते दम तक पाले।

भदेली में मोरारजी ने देखा कि वहां के मछुआरे, कोली, हलपति आदि लोग शराब बहुत पीते थे। वे लोग काफी मेहनती थे, अच्छी कमाई करते थे फिर भी शराब की लत के कारण गरीब के गरीब ही रहा करते थे। उनसे बातचीत करते समय वे लाचारीपूर्वक बताते कि जब तक शराब के अड्डे हैं, तब तक वे इस बुराई से नहीं निकल सकते। शराब के बुरे नतीजे बचपन में ही देखने के बाद मोरारजी को शराब के प्रति जीवनपर्यंत सख्त नफरत रही।

गांव में किसी के बीमार होने पर मोरारजी और अन्य बच्चे उनकी देखभाल के लिए पहुंच जाते, छोटे-से गांव में भाईचारे का अच्छा वातावरण था।

पाठशाला की पढ़ाई के दौरान मोरारजी में किसी तरह की कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। विद्यालय में पूरा ध्यान देते थे इसलिए घर पर पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती थी, फिर भी अव्वल नंबर पर रहते थे। पाठशाला में अगर कभी कोई अध्यापक अनुपस्थित होते तो प्रधानाध्यापक उन्हें चौथी-पांचवीं तक की कक्षा में पढ़ाने के लिए भेज दिया करते थे। संस्कृत और गणित के अध्यापक श्री मुकुंद राय पंडया उनको मैट्रिक में अच्छे नंबर लाने के लिए अधिक मेहनत करने की सलाह देते थे, पर उस समय मोरारजी को आगे आने में या नाम रोशन करने में कोई रुचि ही नहीं थी, अतः उन्होंने पंडया जी की सलाह पर कोई ध्यान नहीं दिया।

मैट्रिक की परीक्षा

पंद्रह वर्ष की आयु में मोरारजी के नाना ने उनका रिश्ता जोगीभाई देसाई की पुत्री गजराबहन के साथ तय कर दिया। उस जमाने में रिश्ते के बारे में मोरारजी से पूछने का कोई सवाल ही नहीं था। उनके माता-पिता, मणिबहन और रणछोड़जी, उस समय सौराष्ट्र में थे। गोपालजी ने उनको खबर भेज दी थी।

फरवरी, 1911 की में उनकी शादी पक्की कर दी गई, अतः माता-पिता सौराष्ट्र से वलसाड़ आए तथा मदन फलिया वाला अपना घर खोला। लेकिन शादी के दो दिन पहले पिताश्री रणछोड़जी देसाई ने घर के पीछेवाले कुएं में कूदकर आत्महत्या कर ली, उसका कारण किसी की समझ में नहीं आया। मानसिक अस्थिरता के कारण उन्होंने यह कदम उठाया होगा, ऐसा एक अनुमान है। तय की गई शादी को रोका नहीं जा सकता इस तरह का एक रिवाज है, अतः तीसरे ही दिन, निर्धारित तिथि को ही, सादगीपूर्वक शादी की रस्म संपन्न कर दी गई।

मोरारजी उस समय मैट्रिक में पढ़ते थे। 1911 में ही उन्हें मैट्रिक की परीक्षा देनी थी, लेकिन परीक्षा के लिए नियम था कि जिनकी आयु 16 वर्ष पूरी हो गई हो वही परीक्षा दे सकता है। जबकि मोरारजी ने उस वर्ष केवल 15 वर्ष ही पूरे

किए थे अतः वे परीक्षा में नहीं बैठ सके, और एक वर्ष बेकार गया।

फरवरी 1912 में उनके 16 वर्ष पूरे हुए अतः उसी वर्ष अक्तूबर में उन्होंने परीक्षा दी। परीक्षा देने के लिए अहमदाबाद जाना था। जिस दिन वे निकले उस दिन नरक चौदशी थी, लेकिन मोरारजी को इसके बारे में कोई वहम नहीं था। घर में भी किसी ने वहम नहीं किया और मोरारजी मैट्रिक की परीक्षा दे आए।

नतीजा निकला तो मोरारजी अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए। पूरे विश्वविद्यालय में वे 45वें स्थान पर आए थे। वे और अच्छे अंक ले सकते थे, लेकिन गणित में प्रतिभावान होने के बावजूद उस विषय में उनको केवल 55 प्रतिशत अंक ही मिले थे। यद्यपि, उसमें दोष मोरारजी का ही था। गणित के पर्चे के उत्तर देते समय उन्होंने भूमिति के कठिन प्रश्न पहले हल किए, जिसमें अधिक देर हो गई, इसलिए आसान सवालों के उत्तर देने का समय ही नहीं बचा। फिर भी विश्वविद्यालय में पहले पचास छात्रों में अपना स्थान बना लेने से उनको काफी लाभ मिले।

अब क्या ?

असल समस्या अब शुरू होती है। पति के स्वर्गवास के बाद मणिबहन पिता के आग्रह के कारण अपनी संतानों के साथ मैके में रहने लगीं, लेकिन छह महीने के अंदर ही पिताजी का भी स्वर्गवास हो गया। थोड़े ही समय में परिवार में कुछ कहासुनी हो गई और स्वाभिमानी मणिबहन अपने बच्चों के साथ भदेली त्याग कर वलसाड़ के घर में आकर रहने लगीं।

वलसाड़ में परिवार की हालत कठिन थी। संतानों में मोरारजी सबसे बड़े थे। उनके बाद तीन भाई और तीन बहनें थीं, इसके अलावा दादी, माता और पत्नी समेत दस सदस्यों का परिवार था। बड़े होने के कारण इस बड़े परिवार का दायित्व 16 वर्ष के मोरारजी पर आ पड़ा। परिवार की कोई आमदनी नहीं थी। मणिबहन की माताजी को अपनी पुत्री के प्रति अपार प्रेम था इसलिए मैके की तरफ से कुछ सहायता मिल जाती थी।

ऐसी हालत में मोरारजी कालेज में पढ़ने का विचार भी कैसे कर सकते थे ? और तिस पर भी मुंबई जाकर पढ़ना था। इसके लिए खर्च कहां से आए ? वलसाड़ में परिवार का क्या हो ? बड़ा लड़का नौकरी-पेशा होकर परिवार का दायित्व संभाल लेगा, इस तरह की आशा माता को भी होती है।

फिर भी मोरारजी आगे पढ़ना चाहते थे, हालत कठिन थी, तथा माता को समझाना मुश्किल था। ऐसे में एक सानुकूल घटना घटी। रणछोड़जी देसाई ने जहां पर जीवनपर्यंत शिक्षक के रूप में सेवा की थी, उस भावनगर की रियासत के महाराजा ने प्रतिमाह 10 रु. छात्रवृत्ति देने की पेशकश की। इस छोटी-सी घटना ने मोरारजी के भविष्य के दरवाजे खोल दिए। माता ने अनिच्छा से मोरारजी को

कालेज में पढ़ने के लिए मुंबई जाने की अनुमति दे दी।

जनवरी 1913 में मोरारजी मुंबई पहुंचे। उन दिनों कालेज जनवरी माह से शुरू होते थे। स्टेशन पर उतर कर किसी परिचित के यहां जाना था। विक्टोरियावाले ने किराए का एक रुपया और कुली ने छह आने मांगे। मोरारजी इतने पैसे देने के बजाय छोटी-सी पेटी कंधे पर रखकर ग्रांटरोड से गिरगांव तक पैदल ही चल दिए।

मैट्रिक में वे विश्वविद्यालय के पचास छात्रों में से एक थे इसलिए उनको गोकलदास तेजपाल (जी. टी.) बोर्डिंग में फ्री बोर्डर के रूप में दाखिला मिल गया। उस संस्था में तेजस्वी छात्रों को ही दाखिला दिया जाता था। वहां से कपड़े, किताबें और कालेज की फीस भी दी जाती थी। अगर वे इन सुविधाओं से वंचित रहते तो उनके लिए कालेज की शिक्षा कठिन हो जाती।

मोरारजी ने मुंबई के विल्सन कालेज में दाखिला लिया। जी. टी. बोर्डिंग के छात्रों से वहां पर कम फीस ली जाती थी। इसके अलावा कालेज पास होने के कारण आना-जाना भी पैदल हो सकता था।

कालेज की पढ़ाई के दौरान भावनगर रियासत की तरफ से मिल रही दस रुपए की छात्रवृत्ति वे अपनी मां को ही भेज देते थे। और स्वयं ट्यूशन पढ़ाकर कुछ पैसे कमा कर अपने निजी खर्च की व्यवस्था कर लेते थे। खर्च भी यथासंभव कम ही करते थे। अच्छे कपड़े के बदले बोर्डिंग की तरफ से मिलनेवाले सादे कपड़े ही पहनते थे। ट्राम में बैठने के बजाय पैदल ही चलते थे। नाटक-सिनेमा शायद ही कभी देखते थे। उनको क्रिकेट देखने का बड़ा शौक था। उस समय क्वोड्रनयूलर मैच बहुत लोकप्रिय होते थे। टिकटों का खर्च तो संभव नहीं था, इसलिए चौकीदार की नजर से बचाकर चुपचाप घुस जाते। उन्होंने चार वर्ष तक इस तरह मैच देखे।

मैट्रिक तक उनकी लंबाई कम थी, जो कालेज के वर्षों के दौरान बढ़ी। अखाड़े में व्यायाम करने के कारण शरीर और मजबूत हुआ। एक बार तो उन्होंने युवा चौकीदार को कुश्ती में परास्त कर दिया।

इन वर्षों में उनकी डर की भावना भी निकल गई। भय करीब करीब बिल्कुल निकल गया तथा किसी का भी मुकाबला करने की हिम्मत पैदा हुई।

मोरारजीभाई के दिमाग में निसर्गोपचार के प्रति श्रद्धा पैदा करनेवाले ग्रंथों का अध्ययन इन वर्षों के दौरान हो सका। जी. टी. बोर्डिंग में एक छोटा-सा पुस्तकालय था। वहां पर बर्नार्ड मेकफेडन के फिजिकल कल्चर के एनसाइकलोपीडिया के पांच ग्रंथ मिल गए। इंटर आर्टस में पढ़नेवाले मोरारजी ने तीन-चार हजार पृष्ठों के इन ग्रंथों को पढ़ डाला। इनसे उनको प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी प्राप्त हुई, और इस उपचार पद्धति पर उनके स्थायी विश्वास का निर्माण हुआ।

इंटर के वर्षों के दौरान अंग्रेजी के प्राध्यापक डा. स्कॉट बाइबल की शिक्षा भी देते थे। उन दिनों विल्सन कालेज में बाइबल की कक्षा में उपस्थित रहना

अनिवार्य था। कक्षा का प्रारंभ ईसाई धर्म की प्रार्थना से होता था। डा. स्कॉट आंखें बंद करके प्रार्थना करने लगते तो दरवाजे के पास बैठे हुए मोरारजी और अन्य दो-तीन छात्र चुपचाप बाहर निकल जाते। डा. स्कॉट ने एक बार उन्हें देख भी लिया था।

मोरारजीभाई जब कालेज में पढ़ रहे थे तब देश में राष्ट्रीय भावना का बहुत विकास हो रहा था। होमरूल आंदोलन शुरू हुआ था। गांधी जी भारत लौट आए थे। श्रीमती एनी बेसेंट, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, लोकमान्य तिलक, गांधी जी, सरोजिनी नायडू आदि अनेक नेताओं के भाषण सुनने का लाभ मोरारजी को मिला था। जिसके कारण युवा मोरारजी में राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई तथा दिनोंदिन दृढ़ होती गई। दिसंबर, 1915 में कांग्रेस का अधिवेशन बंबई में हुआ था। मोरारजी उसमें बीस स्वयंसेवकों के दल के कैप्टन थे। गांधी जी को उन्होंने इस अधिवेशन में पहली बार सुना तथा गांधी जी के व्यक्तित्व का उनके दिमाग पर गहरा प्रभाव पड़ा।

मैट्रिक तक की शिक्षा के दौरान उनकी घर में पढ़ने की आदत थी ही नहीं। कालेज में इस वृत्ति का असर दिखाई दिया। पहले वर्ष के दौरान बहुत कम पढ़ पाए, इसके कारण बड़ी मुश्किल से दूसरा दर्जा पाया जा सका। इंटर में परीक्षा विश्वविद्यालय जैसी होती थी, जिसमें वे काफी मुश्किल से उत्तीर्ण हो सके। उन्होंने बी. ए. में भौतिकी और रसायन विज्ञान जैसे विषय लिए थे। प्रायोगिक परीक्षा में अच्छा ध्यान दिया था, अधिक तो नहीं लेकिन काफी कहा जा सके उतनी हद तक पढ़ाई भी की थी। लेकिन परीक्षा के दस-पंद्रह दिन पहले दिमाग में ऐसा विचार घर कर गया कि 'मुझे कुछ भी आता नहीं है।' इस परेशानी के कारण अंतिम दस दिनों में कुछ भी नहीं पढ़ पाए, परंतु परीक्षा में बैठने से पहले कई छात्रों से सुना कि 'विशेष पढ़ाई नहीं की है इसलिए परीक्षा में अच्छा नहीं लिख पाएंगे।' मोरारजी ने सोचा कि ये सब भी मेरे जैसे ही हैं। वे अंतिम दस दिनों से पढ़ नहीं सके थे इसलिए उन दिनों के दौरान दिमाग को आराम मिला था, जिससे शांत चित्त से वे अच्छे उत्तर लिख पाए।

बी. ए. की परीक्षा मोरारजी ने पहली श्रेणी से उत्तीर्ण की। उनको फेलोशिप प्राप्त हुई, जिससे प्रतिमाह 50 रुपए मिलने लगे। पहले वर्ष की कक्षा में उन्हें डेमोस्ट्रेटर के रूप में काम करना था।

अब मोरारजी देसाई ने भौतिकी और गणित के विषयों को लेकर बी.एससी. में दाखिला लिया। उनकी इच्छा एम. एससी. करके प्राध्यापक बनने की थी। अन्य किसी करियर का विचार उनके दिमाग में आया ही नहीं था। शायद पिता के अनुरूप ही शिक्षा के क्षेत्र में जाने का विचार उन्हें आया होगा, लेकिन उनके लिए कुछ और ही निर्मित था।

2
सरकारी नौकरी में

मोरारजी जब बी. एससी. में पढ़ रहे थे तब उन्होंने अखबार में एक विज्ञापन पढ़ा। बोम्बे प्रोविन्शियल सिविल सर्विस (रेवेन्यू साइड) का एक स्थान भरा जाना था। उस समय पब्लिक सर्विस कमीशन नहीं था, परीक्षाएं नहीं होती थीं, उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाकर सीधी नियुक्ति ही की जाती थी। मोरारजी के अध्यापक डाह्याभाई नाइक ने उनसे आवेदन करवाया। मोरारजी की इच्छा आवेदन करने की नहीं थी। वे मानते थे कि ऐसे स्थान सिफारिश से भरे जाते हैं, इसलिए यह नौकरी मिलनेवाली नहीं है, लेकिन प्रो. नाइक और भौतिकी के प्राध्यापक हेम्ले के कहने से मोरारजी ने आवेदन कर दिया।

उन दिनों मुंबई विश्वविद्यालय में सैनिक प्रशिक्षण के लिए यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर (यू. टी. सी.) शुरू किया गया था। उसका प्रशिक्षण नियमबद्ध, अनुशासित और स्वास्थ्य सुधारने में काफी उपयोगी रहा।

प्रोविन्शियल सिविल सर्विस के लिए किए गए आवेदन पत्र के साथ बाइबल कक्षा के अध्यापक डा. स्कॉट ने एक अच्छा प्रमाणपत्र दे दिया था। उन्होंने तो रेवेन्यू विभाग के एक्जिक्यूटिव काउंसिल के नाम एक सिफारिशी पत्र भी लिख देने में रुचि दिखाई थी, लेकिन मोरारजीभाई को सिफारिशी पत्रों में विश्वास नहीं था। उन्होंने तो आवेदन पत्र के साथ केवल प्रमाणपत्र ही भेजा। यू. टी. सी. में मोरारजी ने इतना अच्छा कार्य किया था कि उनकी कंपनी के कैप्टन सीस ने उन्हें एक बहुत अच्छा प्रमाणपत्र दिया और उसमें लिखा कि, 'यू. टी. सी. की सफलता के पीछे मोरारजी का काफी योगदान रहा है और अगर सरकार उन्हें प्रोविन्शियल सर्विस में लेगी तो इससे राज्य को काफी लाभ होगा।' यह प्रमाणपत्र बाद में भेजा गया।

इस स्थान की नियुक्ति के लिए साक्षात्कार हेतु 13 प्रार्थियों को बुलाया गया था। मोरारजी के पास साक्षात्कार के लिए पहनने योग्य कपड़े भी नहीं थे। एक अन्य फेलो का सूट पहनकर वे साक्षात्कार के लिए गए। साक्षात्कार लेने वाले तीन अंग्रेज सेक्रेटरी थे। साक्षात्कार दस मिनट का रहा। आखिरी प्रश्न यह था—

"अगर आपको यह नौकरी नहीं मिलती है तो, आपको कैसा लगेगा ? और फिर आप क्या करेंगे ?"

मोरारजी ने बिना हिचकिचाए स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया—

"इस नौकरी के न मिलने पर मुझे कोई निराशा नहीं होगी। मैं केवल इसी नौकरी के भरोसा नहीं बैठा हूं। मेरी युवावस्था अभी शुरू ही हो रही है और संसार विशाल है, इसलिए मुझे अन्य योग्य काम मिल ही जाएगा इसका मुझे विश्वास है।"

मोरारजीभाई को नौकरी मिल गई। मई 1918 में 22 वर्ष की आयु में प्रोविन्शियल सिविल सर्विस में उनकी नियुक्ति हुई। अहमदाबाद में प्रोबेशनरी डिप्टी कलक्टर के पद से उनकी नौकरी की शुरुआत हुई। प्रोबेशन की अवधि दो वर्ष की थी।

नियुक्ति के बाद छह छह महीने के अंतराल से उन्होंने दो विभागीय परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं जिसके कारण उनको तीसरे और फिर दूसरे वर्ग के मजिस्ट्रेट के अधिकार मिले। उसके छह महीने पश्चात पहले वर्ग के मजिस्ट्रेट के अधिकार मिल गए। डिप्टी कलक्टर को फौजदारी मामलों को सुनने का और प्रांत अधिकारी के रूप में राजस्व का काम करना था। उन दिनों डिप्टी कलक्टरों को जिलों की एक या अधिक तहसीलों का चार्ज दिया जाता था तथा उनको उस क्षेत्र का प्रांत अधिकारी कहा जाता था। मोरारजीभाई को सबसे पहले अहमदाबाद जिले की प्रांतिज तहसील का चार्ज सौंपा गया।

प्रोबेशन की अवधि समाप्त होने पर अहमदाबाद जिले से स्थानांतरण का समय आया। उस समय पड़ोसी खेड़ा जिले में प्रांत अधिकारी का एक स्थान खाली था। अपने ऊपरी अधिकारियों की अगर थोड़ी बहुत खुशामद की होती तो यह स्थान मोरारजी को अवश्य मिल सकता था। लेकिन उनको अपने मातृपक्ष और पितृपक्ष की तरफ से ऐसे संस्कार प्राप्त हुए थे कि खुशामद करनेवाले और सुननेवाले दोनों को खराब करनेवाली वस्तु है, अतः खुशामद द्वारा अच्छा स्थान प्राप्त करने का विचार ही उनके दिमाग में नहीं आया। परिणामस्वरूप उनका स्थानांतरण सुदूर थाणे जिले में प्रांत अधिकारी के पद पर हो गया।

मोरारजी देसाई रिश्वत लेने वाले को सजा दिलवाने में विश्वास रखते थे। सिफारिश के आधार पर किसी का काम नहीं करते थे। उनके इस स्वभाव की साख इतनी फैल गई कि वे जहां भी गए, ऐसे लोग उनसे डरते रहे।

जब वे थाणे जिले में थे तब अंतिम डेढ़ वर्षों के दौरान उनका मुख्यालय कल्याण में था। जिस बंगले में वे रहते थे उसमें भूत का वास है, ऐसा कहा जाता था। मोरारजीभाई हमेशा गैलरी में सोते थे लेकिन उनको भूत कभी दिखाई नहीं दिया।

1921 में महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया तब मोरारजीभाई

असमंजस में पड़ गए : नौकरी छोड़ें या न छोड़ें ? उनको गांधी जी के विचारों और कार्यों के प्रति काफी आकर्षण था, लेकिन असहयोग आंदोलन ने उनको सरकारी नौकरी छोड़ने के लिए प्रेरित नहीं किया। उसके बजाय भाइयों को पढ़ाने और बहनों की शादी करने में उनको अपना कर्तव्य दिखाई दिया। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "इसका अर्थ है कि उस समय के स्वतंत्रता आंदोलन ने मेरे दिमाग में तीव्र आंदोलन पैदा नहीं किया था।"

थाणे जिले से मोरारजी का स्थानांतरण भरुच जिले में और उसके बाद पंचमहाल जिले में हुआ।

प्रत्येक स्थानांतरण के समय परिवार को कोई तकलीफ न हो इसलिए मोरारजी पत्नी को बच्चों के साथ उनके मैके भेज देते। फिर वे अपना सामान बांधकर निकलते। नए स्थान पर पहुंचने के बाद सारे सामान को व्यवस्थित कर परिवार को बुला लेते।

राजस्व संबंधी काम को निपटाने के लिए उन्हें तहसील के सभी गांवों में जाना पड़ता था। मोरारजीभाई उन गांवों में कभी घोड़े पर सवार होकर तो कभी पैदल चलकर जाते थे। उनको बचपन से ही चलने की आदत थी। बड़े होने पर वे लंबी पैदल यात्रा करना पसंद करते थे। कोई पटवारी आलसी है यह पता लगने पर मोरारजी उसके गांव तक पैदल चले जाते और उसको अपने साथ पैदल चलाते हुए ले आते। उसे दस-पंद्रह मील चलने की शिक्षा मिल ही जाती। वे प्रत्येक बात की बारीकी से जांच करते थे तथा चौकसी बरतने और सत्य के पालन के आग्रही थे। जिसके कारण उनके अधीनस्थ अधिकारी एवं कर्मचारी सजग और सावधान रहते थे।

सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट के रूप में उनके सिर पर फौजदारी मुकदमे चलाने की जिम्मेदारी थी। इसके अलावा दूसरी एवं तीसरी श्रेणी के मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध की गई अपीलों को भी उन्हें ही सुनना पड़ता था। मोरारजीभाई वकीलों की बेकार की लंबी बहस रोकते, पेशी की मुद्दतें बढ़ाते नहीं बल्कि तीन-चार पेशियों के दौरान ही मुकदमे को सुनकर अपना निर्णय सुना देते। अपील के समय केवल चर्चा करने योग्य मुद्दों की ही चर्चा करने देते जिससे एकाध घंटे में काम निपट जाता।

1919 से लेकर 1930 के 12 वर्षों के दौरान मोरारजीभाई ने कोई एकाध हजार फौजदारी मुकदमों की सुनवाई की। उनके निर्णयों के विरूद्ध की गई अपीलों में केवल तीन ही मामलों में हाईकोर्ट ने अपना निर्णय बदला था। बाकी सब उसी प्रकार रहे।

मोरारजीभाई की अदालत से दूसरी अन्य अदालतों में मुकदमों को स्थानांतरित कराने के लिए बारह वर्षों में चार-पांच बार ही कोशिशें की गईं। लेकिन

कोई वकील ऐसे प्रयास में सफल नहीं हुआ था। मोरारजीभाई पूरी तरह न्यायोचित और निष्पक्षता से निर्णय करते थे। वे किसी भी पूर्वाग्रह के प्रभाव में नहीं आते थे।

एक वकील ने एक बार अपील की सुनवाई के दौरान लंबा भाषण दिया। मोरारजीभाई ने अमुक जरूरी मुद्दों की ही चर्चा करने को कहा। वकील ने गुस्से में चले जाने की धमकी दी। मोरारजीभाई ने कहा, "जाना है, तो जा सकते हैं, लेकिन उससे अपील की सुनवाई नहीं रोकी जाएगी।" वकील सचमुच चले गए। मोरारजीभाई ने विपक्ष की बातें सुनकर निर्णय सुना दिया। निर्णय चले जाने वाले वकील के पक्ष में था।

न्याय करने में सतर्कता बरतने का एक अन्य उदाहरण देखिए—एक लूट की घटना का मुकदमा था। आरोपी मोटा, कद्दावर और भयावह दिखाई देता था। देखने से ही लगता था कि उसने अवश्य लूटपाट की होगी। रात को डेढ़ बजे लूटने की घटना हुई थी। लूट के चश्मदीद गवाह भी अदालत में अपनी गवाही देने के लिए पहुंचे थे। सुनवाई समाप्त होने के बाद मोरारजीभाई को लगा कि आरोप सही लगता है, लेकिन निर्णय लिखते समय लगा कि जिस समय पर यह लूट हुई है वह समय रात के डेढ़ बजे का था। उस समय क्या कोई व्यक्ति किसी को इतनी दूरी से देखकर पहचान सकता है ? उन्होंने निर्णय लिखना कुछ समय के लिए रोक दिया। आठ दिनों के बाद वही तिथि पड़ती थी। उस दिन रात को डेढ़ बजे उतनी ही दूरी पर कुछ लोगों को खड़ा रखा। उन्होंने देखा कि उतने उजाले में, उतनी दूरी से किसी को नहीं पहचाना जा सकता। दूसरे दिन उन्होंने आरोपी को संदेह का लाभ देते हुए बरी कर दिया।

मोरारजी जब भरूच में थे, तब उत्तरी विभाग का कमिश्नर दौरे पर आया। उन्होंने मोरारजी से पूछा, "यहां आपके पास कितना काम रहता है ?"

मोरारजी ने बिना हिचकिचाए सही बात बता दी, "यहां मेरे पास पूरे दिन का काम नहीं है। औसतन तीन-चार घंटे से अधिक का काम नहीं रहता है।"

कमिश्नर ने कहा, "आपको अधिक काम दिया जाना चाहिए।"

मोरारजी ने कहा, "अगर ऐसा होगा, तो मैं आपका आभारी रहूंगा।"

पंचमहाल में वे जिले के मुख्य नगर गोधरा के कलक्टर के पर्सनल एसिस्टेंट थे तथा गोधरा तहसील के प्रभारी भी थे। यह तहसील बहुत बड़ी थी।

गोधरा में म्यूनिसिपैलिटी और बिजली की फैक्टरी वालों के बीच सड़क पर रोशनी की जाने वाली बत्तियों को लेकर तकरार चल रही थी। मोरारजीभाई के गोधरा जाने के दो-तीन महीने बाद दोनों पक्षों ने उनको इस लड़ाई में मध्यस्थ बनने को कहा। दोनों को उनकी मध्यस्थता में पूरा विश्वास था। मोरारजी ने कलक्टर से अनुमति मांगी। कलक्टर ने कहा, "वे सब अवसरवादी लोग हैं। आप सफल नहीं होंगे। बदनाम होंगे। फिर भी अगर मध्यस्थता करनी है तो मेरी अनुमति है।"

इससे पहले कलक्टर इस लड़ाई में मध्यस्थता कर चुके थे और विफल रहे थे। मोरारजी का तरीका निराला था। उन्होंने दोनों पक्षों को अपनी उपस्थिति में परस्पर विचार-विमर्श करके निर्णय करने को कहा। दो दिन विचार-विमर्श हुआ। कोई कभी आपे से बाहर हो जाता तो मोरारजी उसे शांत करते, अगर कोई ऐसा-वैसा बोलने लगता, तो मोरारजी उसे समझाते। दो दिनों के पश्चात दोनों पक्ष एक निर्णय पर सहमत हो गए। निर्णय लिखा गया। मोरारजी ने उस पर हस्ताक्षर किए। तकरार खत्म हुई। कलक्टर को आश्चर्य और आनंद भी हुआ। मोरारजी के प्रति उनके मन में आदर का भाव जागृत हुआ।

गोधरा में शहाबुद्दीन नाम का एक दारोगा था। दादा किस्म का होने से अन्य लोग भी उससे घबराते थे। जिले का पुलिस मुखिया एक युवा अंग्रेज था। वह इस दारोगा पर अंधविश्वास करता था। परिणामस्वरूप दारोगा मनमानी करने लगा।

एक बार मोरारजी देसाई तहसील के दौरे पर गए। वहां पर एक हरिजन महिला ने उस दारोगा के विरुद्ध अपने पर बलात्कार किए जाने की शिकायत की। शिकायत खुद दारोगा के खिलाफ थी, इसलिए पुलिस द्वारा प्राथमिक जांच कराने का कोई मतलब नहीं था। कानून के तहत मजिस्ट्रेट भी प्राथमिक जांच कर सकता है। इसलिए उन्होंने स्वयं ही जांच शुरू कर दी। हैड कांस्टेबल की डायरी अपने कब्जे में ले ली। उसमें लिखा था कि उस दिन दारोगा उस गांव के दौरे पर गया था। मोरारजी ने शिकायतकर्ता और उनके गवाहों को ठीक से जांचा।

शाम को उनके नाम डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट (अर्थात कलक्टर) की चिट्ठी आई कि, आपके विरुद्ध डी.एस.पी. (पुलिस मुखिया) ने शिकायत की है कि आपने दारोगा को गलत फंसाया है। इस बारे में सही ब्यौरा बताइएगा। मोरारजी ने गोधरा जाकर उन्हें बताया।

कलक्टर ने कहा, "डी.एस.पी. का कहना है कि उस दिन दारोगा उनके साथ थे।"

मोरारजी ने कहा, "तो आपको उनसे इस तरह का बयान लिखवा लेना चाहिए था। मेरे पास जो डायरी है, उससे तो उल्टा ही प्रमाणित होता है। डी.एस. पी. के बयान से तो उनके विरुद्ध भी कदम उठाने होंगे।" मोरारजी ने आगे यह भी कहा, "आप अगर यह समझते हैं कि यह मुकदमा मुझे नहीं सुनना चाहिए तो आप उसे किसी और मजिस्ट्रेट के सुपुर्द कर सकते हैं, उस पर मेरी कोई आपत्ति नहीं होगी। लेकिन अगर इस मुकदमे की सुनवाई मुझे ही करनी है तो मेरी आपसे एक प्रार्थना है, कृपा करके आप इस जांच में दखलंदाजी न करें।"

कलक्टर ने बात को स्वीकारा तथा मुकदमे की सुनवाई मोरारजी ने ही की।

कलक्टर ने डी.एस.पी से लिखित बयान देने को कहा तो वह मुकर गया। उसने दारोगा की उपस्थिति के बारे में जो कहा उससे भी इंकार कर दिया। कलक्टर

समझ गए कि यह आदमी झूठ बोल रहा है।

मोरारजी ने प्राथमिक जांच के आधार पर वारंट जारी कर दारोगा को जेल भेज दिया। उसको जमानत भी नहीं मिली। सत्र न्यायालय ने भी उसकी जमानत की याचिका खारिज कर दी। फलस्वरूप यह मुकदमा जब तक मोरारजी की अदालत में और सत्र न्यायालय में चला तब तक उस दारोगा को कैद में रहना पड़ा।

जिले में यह दारोगा कुख्यात था। ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कराने वाला आदमी कैसा है, उसे देखने के लिए सैकड़ों लोग गोधरा गए।

मोरारजी ने इस मुकदमे को सुनवाई के बाद सत्र न्यायालय को सौंपा। सत्र न्यायालय में मोरारजी को गवाह के रूप में बुलाया गया। उन्होंने जो जानकारी जिस रूप में आई थी उसी रूप में कह सुनाई। लेकिन शिकायतकर्ता महिला के वकील ने महिला और उसके गवाहों को गलत कहना सिखाया था। इससे मोरारजीभाई की गवाही में और उन गवाहों की गवाही में अंतर आ गया। आरोपी को उस विरोधाभास का लाभ मिला तथा पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में उसे रिहा कर दिया गया। उसको अगर येन-केन सजा ही दिलानी होती तो, मोरारजीभाई भी अपनी गवाही में थोड़ा झूठ बोलकर, उद्देश्य में सफल हो सकते थे। अपनी गवाही से आरोपी को लाभ पहुंचेगा यह जानते हुए भी उन्होंने सही बात ही कही। उसके बाद उस आदमी ने भविष्य में कोई गलत काम न करने का आश्वासन मोरारजीभाई को दिया तथा उस पर उसने अमल भी किया।

व्यवहार में शुद्धि का आग्रह

मोरारजीभाई को सिफारिश से सख्त एतराज था। वे किसी की भी सिफारिश नहीं सुनते थे। अगर कोई सिफारिश करने आता तो उसे साफ साफ बता देते कि आप जिसके बारे में सिफारिश करेंगे उसके विरुद्ध ही निर्णय होगा। एक-दो बार उन्होंने ऐसा किया भी। इसलिए लोग भी समझने लगे कि इस आदमी से सिफारिश करने से लाभ के बजाय नुकसान ही होगा। इसलिए सिफारिश लेकर कोई उनके पास जाता ही नहीं था।

नौकरी के दौरान उनको महीनों तक गांवों में जाना पड़ता था। दौरे के लिए आवश्यक सामान अपने साथ ही ले जाया करते थे, फिर भी किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो उसे वह नकद दाम देकर खरीद लेते थे, कुछ भी मुफ्त या उधार नहीं लेते थे। गोधरा में जिस व्यक्ति से वह अपने घोड़े के लिए घास मंगाते थे उसने एक बार घास के पैसे लेने से मना कर दिया। तब मोरारजी ने उससे कहा, "मैं थोड़े और अधिक पैसे भी भेज देता हूं, तथा भविष्य में कभी भी तुम्हारे यहां से घास नहीं मंगाऊंगा।" उसके बाद उस आदमी ने घास के पैसे लेने से कभी

मना नहीं किया।

एक बार एक सज्जन आम की टोकरी लेकर आए। उसने कहा कि यह आपके बच्चों के लिए हैं। मोरारजीभाई ने कहा कि यदि ये आप किसी गरीब के बच्चों को दे देते तो अच्छा होता। उन सज्जन ने कहा कि आप जिन्हें ठीक समझते हों उन्हें स्वयं दे दीजिए। मोरारजीभाई ने अपने कंपाउंड में रह रहे हरिजन परिवार को वह टोकरी दे दी। वह आदमी फिर कभी आम लेकर नहीं आया।

जिस तरह मोरारजीभाई स्वयं किसी से मुफ्त चीज नहीं लेते थे, उसी तरह अपने वरिष्ठ अधिकारियों के लिए कोई चीज मुफ्त में दिलवाने का माध्यम भी नहीं बनते थे। गोधरा में हार्टशोन नाम के एक नए कलक्टर आए, तब से ही उनके और मोरारजी के बीच में कुछ विरोध पैदा हो गया। नए कलक्टर ने गोधरा आते ही अपना सामान अपने निवास पर पहुंचाने के लिए मोराजीभाई से कहा। मोरारजीभाई ने निर्देश के अनुसार सारा सामान पहुंचा दिया तथा उस पर लगे खर्च का बिल भी कलक्टर को भेज दिया। कलक्टर ने बिल का भुगतान तो कर दिया लेकिन उसे अच्छा नहीं लगा।

कलक्टर ने मोरारजीभाई से कहा कि मेरे कंपाउंड में एक भैंस रखी जाए तथा किसी भैंस वाले से कहा जाए कि वह उसका ध्यान रखे, आवश्यक काम-काज कर दे तथा दूध निकाल दिया करे। मोरारजीभाई ने कलक्टर साहब से भैंस की कीमत, उस पर होने वाले खर्च आदि का हिसाब लगाकर कहा कि अगर आप इतना खर्च कर सकते हैं तो भैंस के बारे में सोचा जा सकता है। कलक्टर ने बात छोड़ दी। कुछ समय पश्चात किसी और से प्रबंध करवाया।

कलक्टर ने फिर एक बार उनसे अपने बंगले के कंपाउंड की सफाई का खर्च कंटीजंसी खर्च के खाते में डालने के लिए कहा, तब मोरारजीभाई ने उनका ध्यान दिलाया कि नियमों के तहत उस खर्च को सरकारी खजाने से नहीं लिया जा सकता। उस खर्च को उन्हें स्वयं ही वहन करना पड़ेगा। कलक्टर को यह भी अच्छा नहीं लगा।

रिश्वतखोरी से भी मोरारजीभाई को सख्त नफरत थी। नए जिले में उनकी नियुक्ति होने पर उनके अधीन कर्मचारियों के विरुद्ध रिश्वत लेने की जो भी शिकायत उन्हें मिलती, वे स्वयं उसकी जांच करते। अगर उन्हें पूरा विश्वास हो जाता कि इस आदमी ने रिश्वत ली है तो उसे नौकरी से निकाल देते। इससे उनकी एक ऐसी छाप उभरी कि उनके अधीनस्थ कर्मचारी रिश्वत लेते ही नहीं थे।

कभी कभी कर्मचारी उनको असमंजस की स्थिति में डाल देते जिससे यह कुछ समस्या पैदा हो जाती कि अब कैसे रास्ता ढूंढ़ा जाए ? जैसे, एक गांव की मौके की भूमि सरकार की ओर से किसी आदमी को बेची गई। उस भूमि में गांव के पशु बैठते थे। उसकी बिक्री के विरुद्ध गांववासियों ने मोरारजीभाई से शिकायत

की। फाईल जांचने पर पता चला कि भूमि खुली नीलामी पर बेची गई थी, तथा उसकी स्वीकृति स्वयं मोरारजी देसाई ने ही दी थी। वास्तविकता तो यह थी कि गांववासियों को नीलामी के बारे में सूचना ही नहीं दी गई थी। नीलामी केवल कागज पर ही थी, सर्कल इंस्पेक्टर ने गुपचुप ही जमीन बेच दी थी।

अब क्या हो ? नीलामी की स्वीकृति उन्होंने स्वयं दी थी इसलिए उसे कानूनी रूप से निरस्त करना मोरारजी के लिए असंभव था, लेकिन साथ ही साथ ग्रामवासियों की आपत्ति को दूर करना भी आवश्यक था। उन्होंने इसके लिए एक व्यावहारिक हल खोजा। उन्होंने सर्कल इंस्पेक्टर को बुलाकर कहा कि जमीन खरीदने वाले व्यक्ति से कहो कि यह जमीन कल ही ग्रामवासियों के नाम कर दे वरना, आपके विरुद्ध जांच होगी और आपको सजा होगी। सर्कल इंस्पेक्टर समझ गया कि अब पोल खुल गई है। उसने दूसरे ही दिन जमीन खरीदने वाले व्यक्ति से जमीन के स्वामित्व का राजीनामा ग्रामवासियों के पक्ष में लिखवा लिया। फिर उस जमीन को सरकारी रिकार्ड में ग्रामवासियों के नाम लिखवाया गया।

नौकरी बदलने का प्रयास

पिछले कई दिनों से मोरारजीभाई को सरकारी नौकरी से अरुचि होने लगी थी। सिविल सर्विस में बहुत भेदभाव बरता जाता था। इंडियन सिविल सर्विस (आई.सी. एस.) में गोरे और हिंदुस्तानी अधिकारियों के बीच अविरल भेदभाव बरता जा रहा था। आई.सी.एस. अधिकारी प्रोविन्शियल सिविल सर्विस के अधिकारियों को हेय समझते थे।

आई.सी.एस. अधिकारियों को कांग्रेस और गांधी जी से घृणा थी, जब कि मोरारजीभाई इन दोनों के प्रति प्रेम और आदरभाव रखते थे। एक बार जब महादेवभाई देसाई गोधरा के दौरे पर आए तब मोरारजीभाई ने उनसे अपने यहां ठहरने को कहा। कलक्टर ने इसके बारे में मोरारजीभाई से कुछ कहा तो नहीं, क्योंकि वह मोरारजीभाई का स्वभाव जानता था, लेकिन तिलमिलाया जरूर था।

पंचमहाल जिला लोकल बोर्ड में मोरारजीभाई देसाई अपने पद के कारण सरकार द्वारा नियुक्त पदेन सदस्य थे। बोर्ड के अध्यक्ष के चुनाव में एक अंग्रेजी उम्मीदवार था और दूसरा था सरकार का वफादार व्यक्ति जिसे खान साहब की उपाधि प्राप्त थी। खान साहब एक-दो मतों से पराजित हो गए। खान साहब ने मोरारजीभाई से मत मांगा था, लेकिन मोरारजीभाई ने कोई उत्तर नहीं दिया था। मोरारजी ने कांग्रेसी को ही मत दिया होगा यह समझकर कलक्टर ने मोरारजीभाई से जवाब मांगा। मोरारजीभाई ने उनसे कह दिया, "मुझे किसके पक्ष में वोट देना है, उसके बारे में कुछ नहीं कहा गया था। इसलिए मुझे अपनी समझ के अनुसार निर्णय करना था। इसके अलावा मैंने किसे वोट दिया है वह भी आप जानते नहीं

हैं, इसलिए आप द्वारा जवाब तलब करना मेरी समझ से अनुचित है, तथा इसमें मैं अपना अपमान समझता हूं।" कलक्टर समझ गया। उसने कहा, "कोई बात नहीं, जाने दो।"

इस तरह कई कारणों से नौकरी छोड़ने की इच्छा होने लगी थी। गोधरा में मोरारजीभाई 1924 से थे। 1928 में अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी का एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ जिसमें मुख्य अधिकारी (चीफ आफिसर) का स्थान भरे जाने की सूचना थी। मोरारजीभाई को लगा कि सरकारी नौकरी छोड़ने का यह अच्छा अवसर है। उन्होंने आवेदन किया।

उस समय सरदार वल्लभभाई पटेल अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष थे। मुख्य अधिकारी के स्थान के लिए तीन प्रमुख उम्मीदवार थे। उनमें से एक श्री भगत उस समय प्रोबेशन पर मुख्य अधिकारी का कार्य कर रहे थे। दूसरे श्री दीवान और तीसरे थे मोरारजीभाई देसाई।

म्युनिसिपैलिटी के सदस्यों में मतभेद था। सरदार साहब, दीवान के पक्ष में थे, जब कि सदस्यों की बड़ी संख्या दीवान के विरुद्ध थी, वे चाहते थे कि दीवान को किसी भी कीमत पर नहीं आना चाहिए। वे मोरारजी को पसंद करते थे, लेकिन दीवान न आ जाए इस बात को निश्चित करने के लिए उन्होंने श्री भगत के पक्ष में ही मत दिए और भगत की नियुक्ति हो गई। मोरारजीभाई को वह स्थान नहीं मिल पाया। यह उनके अपने लिए अच्छा ही हुआ। क्योंकि अगर उनकी नियुक्ति उस स्थान पर हुई होती तो वे जीवनपर्यंत म्युनिसिपैलिटी के अधिकारी ही बने रहते। राजनीति में उनका जो योगदान रहा वह नहीं हो पाता। भगत के चुने जाने पर सरदार ने म्युनिसिपैलिटी से त्यागपत्र दे दिया तथा बारडोली जाकर आंदोलन का नेतृत्व किया।

निष्पक्षता का पुरस्कार !

गोधरा में घटी एक घटना ने श्री मोरारजीभाई देसाई के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा। अजीब बात तो यह है कि हिंदू-मुस्लिम दंगों के बारे में उनकी ओर से न्यायी और निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाए जाने पर भी उन पर हिंदुओं का पक्षधर होने और मुसलमानों के विरुद्ध होने के आरोप लगाए गए।

गोधरा शहर की आधे से अधिक जनसंख्या मुसलमानों की थी, उसमें भी मुस्लिम तेली अधिक थे।

लगभग दस वर्ष पहले वहां एक मस्जिद का निर्माण शुरू हुआ था, जो बाद में झगड़े के कारण रुक गया। मोरारजी देसाई की गोधरा में नियुक्ति होने के बाद कई लोगों ने मस्जिद बनाने के लिए उनसे सुरक्षा की मांग की। मोरारजी ने उनको संरक्षण दिया और मस्जिद का निर्माण कार्य संपन्न हुआ।

गोधरा के रेलवे यार्ड में एक दरगाह थी जहां एक फकीर रहता था। रेल लाइन बिछाए जाने से पहले से ही वहां दरगाह थी। रेलवे लाइन बिछने के बाद भी कई दशकों तक वह यार्ड के बीच में ही रही। उसके बाद एक दिन रेल विभाग के अधिकारियों ने फकीर को वहां से दरगाह हटाने का नोटिस दिया। फकीर ने मोरारजीभाई से शिकायत की। मोरारजीभाई ने उस जगह का सर्वेक्षण किया तथा पुराने दस्तावेजों की जांच परख की। उनको लगा कि लंबे समय से फकीर के वहां रहने से कानून से भी उसका वहीं रहने का अधिकार बनता है। उसको बेदखल नहीं किया जा सकता। उन्होंने रेलवे विभाग को पत्र लिखा। रेलवे अधिकारियों ने उनसे कहा कि दरगाह खुली है इसलिए आने-जाने वाली गाड़ियों से उसे खतरा है। मोरारजीभाई ने रेलवे अधिकारियों से कहा कि वे दरगाह के चारों ओर कांटे के तारों की बाड़ बना दें। रेलवे ने सुझाव मान लिया और मुसलमान लोग प्रसन्न हो गए।

एक बार शिव-जयंती के दिन गोधरा में एक भीड़ हाथ में हंसिया लेकर जुलूस के रूप में रास्तों पर निकल पड़ी। इससे दंगे भड़कने का खतरा पैदा हो गया। मोरारजीभाई को पता चला तो वे तुरंत घोड़े पर सवार होकर वहां पहुंचे। मोरारजीभाई के आने की सूचना मिलते ही भीड़ तितर-बितर हो गई। वातावरण शांत हो गया। मोरारजीभाई के घोड़े की टापों की आवाज इतनी तेज थी कि दूर से ही उनके आने का पता चल जाता था।

एक बार गोधरा में ही गणेश चतुर्थी का जुलूस निकलने वाला था। हिंदुओं का आग्रह था कि जुलूस जब मस्जिद के पास से गुजरे तब भी वह मजीरा बजाकर ही निकले। दूसरी ओर सामान्यतया मुसलमान लोग भी अपनी मस्जिद के आसपास कोई बाजा न बजे उसका आग्रह रखते हैं। लेकिन 1927 के उस गणेशोत्सव के जुलूस को वहां के डी.एस.पी. ज़ियाउद्दीन अहमद ने पर्याप्त पुलिस सुरक्षा दी, जिसके कारण मजीरे बजाते हुए ही जुलूस निकला और मुसलमान लोग कुछ नहीं कर सके। लेकिन जब जुलूस अपने समापन के स्थान पर पहुंचा तो उस समय मुसलमानों ने उस पर हमला बोल दिया। परिणामस्वरूप जुलूस के नेता वामनराव मुकादम गंभीर रूप से घायल हो गए, उनको बचाने के लिए बीच में पड़ने वाले उनके मित्र पुरुषोत्तम दास शाह का हमले से घायल होने पर निधन हो गया। कई अन्य लोग भी घायल हो गए।

मोरारजीभाई को हमले की सूचना मिली तो वे तुरंत साइकिल पर सवार होकर वहां पहुंचे। कलक्टर हार्टशोन पहले ही वहां पहुंच गए थे। उनको कांग्रेसियों से घृणा थी। वैसे तो इस दंगे में हमला मुसलमानों ने ही किया था। हिंदुओं ने अपने बचाव में भी जवाबी हमला नहीं किया था, फिर भी चूंकि वे कांग्रेसी हिंदू थे इसलिए कलक्टर का रवैया हिंदू विरोधी और मुसलमान पक्षधर था। उन्होंने

मोरारजीभाई से कहा कि वे अस्पताल जाकर जख्मी लोगों के बयान ले लें। मोरारजीभाई ने एक मजिस्ट्रेट के रूप में सब के निवेदन दर्ज किए और कलक्टर को सौंप दिए।

मुकदमे की जांच के दौरान वामनराव मुकादम ने डी.एस.पी. अहमद के खिलाफ ऐसी अफवाह फैलाई कि इस दंगे को भड़काने में उनका हाथ रहा था। अहमद को इस तरह के झूठे आरोप से बहुत बुरा लगा तथा उनका रवैया शिकायतकर्ताओं के विरुद्ध हो गया। जिसके कारण जांच ठीक ठीक नहीं हो पाई।

कुछ दिन बाद अहमद ने चार हिंदू नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। फिर शांतिभंग न हो इसके लिए उनकी जमानत का मुकदमा मोरारजीभाई की अदालत में कर दिया। आरोपियों के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं था इसलिए मोरारजीभाई ने उनको रिहा कर दिया। कलक्टर इस मुकदमे में बहुत दखलंदाजी करते थे, इसलिए मोरारजी को उनसे कहना पड़ा कि, ''आपकी यह दखलंदाजी उचित नहीं है। इस तरह बिना वजह दखलंदाजी करने वाले दूसरे कलक्टर मैंने नहीं देखे हैं। आपके अधीन रहकर इस तरह मैं काम नहीं कर पाऊंगा, इसलिए कृपा करके आप यहां से मेरा स्थानांतरण करा दीजिए।''

कलक्टर कुछ नहीं बोले लेकिन परोक्ष में मोरारजी से मिलना-जुलना उन्होंने बंद कर दिया। मोरारजीभाई उनके निजी सहायक थे लेकिन उनका संपर्क केवल कागजों पर ही रहा।

जिस जमानत के मुकदमे में मोरारजीभाई ने चार हिंदुओं को रिहा कर दिया था, उन पर कलक्टर के नाराज होने पर भी रिविजन याचिका या अपील नहीं कर सके। प्रमाण ही ऐसे थे कि अपील में वे पक्षपाती रवैया अपनाने वाले के रूप में स्पष्ट दिखाई देते।

हमले का मुख्य मुकदमा आगे बढ़ने से और भी मुश्किल पैदा हुई। आरोपियों के वकीलों ने जख्मी घायलों के बयान लेने वाले मोरारजीभाई से लंबी जिरह की फिर भी उससे वकीलों को कोई लाभ नहीं हुआ। मोरारजीभाई सच्चाई का दामन पकड़े रहे इसलिए वकीलों या मजिस्ट्रेट को उनके बयान में कोई गलती या कमी नजर नहीं आई। लेकिन जब सिविल अस्पताल में घायलों के बयान दर्ज किए जा रहे थे तब सिविल अस्पताल के कंपाउंड में स्थित इंपीरियल बैंक के एजेंट ने मोरारजी के विरुद्ध झूठी गवाही दी कि मोरारजीभाई देसाई गवाही दर्ज करते समय अपराधियों के साथ चर्चा करते थे। किंतु तारापोरवाला के साथ आए हुए एक आई. सी.एस. प्रांत अधिकारी आयंगर ने अपनी गवाही में कहा कि, वह बात बिल्कुल झूठी है। फिर भी मजिस्ट्रेट ने आरोपियों को रिहा कर दिया, इसके अलावा बैंक के एजेंट की गवाही को प्रमाण मानते हुए मोरारजीभाई की आलोचना भी की गई।

हिंदू शिकायतकर्ताओं ने इस निर्णय के विरुद्ध सत्र न्यायालय में अपील दायर

की। सत्र न्यायाधीश ने मजिस्ट्रेट का निर्णय तो बरकरार रखा लेकिन मोरारजीभाई के विरुद्ध लिखी गई टिप्पणियों को बेबुनियाद और अनुचित करार देते हुए हटा दिया।

इस मुकदमे का एक तीसरा पहलू भी प्रकाश में आया। वैसे तो दरअसल देसाई बिल्कुल निष्पक्ष रवैया अपनाते थे फिर भी उनको हिंदुओं का पक्षधर करार देकर कलक्टर ने उनके विरुद्ध जांच करने की मांग ऊपरी अधिकारियों से की। यह तो 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे' वाली बात हुई। गोरा कलक्टर तो साफ साफ मुस्लिमों का पक्षधर था, वह निष्पक्ष मोरारजी को सांप्रदायिक प्रमाणित करना चाहता था।

कुछ समय बाद मोरारजीभाई का स्थानांतरण अहमदाबाद हो गया। उसके बाद ही यह जांच हुई। उत्तरी विभाग के कमिश्नर ने नोटिस भेजा कि आप सांप्रदायिक उद्देश्य से मुसलमानों के विरुद्ध हिंदुओं की तरफदारी कर रहे हैं तो क्यों न आप के विरुद्ध कार्रवाई की जाए ? मोरारजीभाई ने उसको लिखित उत्तर दिया तथा परोक्ष रूप से सफाई भी दी। उन्होंने कहा कि इस मुकदमे में दोष मेरा नहीं कलक्टर का है। मोरारजीभाई ने आग्रह किया कि इस मुकदमे की पूरी पूरी जांच हो लेकिन कमिश्नर ने कहा कि मुझे आपसे हुई बात से पूरी संतुष्टि है। इसलिए आगे और जांच करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन दूसरी ओर कमिश्नर ने सरकार को कुछ और ही लिखा। सरकार की ओर से मोरारजीभाई के विरुद्ध की गई जांच के अनुसार उनको सांप्रदायिक रवैया अपनाने के लिए दोषी करार दिया गया और इसके लिए कोई कारण भी नहीं दिया गया तथा उनका स्थान वरिष्ठता सूची में चार स्थान नीचे कर देने की सजा की सिफारिश की गई। इस निर्णय के बाद उन्होंने त्यागपत्र देने का पक्का निश्चय कर लिया।

मैंने अपना धर्म निभाया

गोधरा में मोरारजीभाई ने अपने निजी जीवन में काफी सुधार किया। उन्होंने जीवन को शुद्ध और संयमी बनाने के प्रयत्न शुरू किए। वे नियमित रूप से गीता पाठ करने लगे। संयम में सहायक हों ऐसे परिवर्तन और नियंत्रण खाने में भी किए। वे लकड़ी के तख्त पर केवल दरी बिछाकर सोने लगे। 1928 में पांचवीं संतान के जन्म के बाद से उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन शुरू कर दिया। खादी के वस्त्र पहनने तो पहले ही शुरू कर दिए थे। निसर्गोपचार में उनका इतना विश्वास था कि बेटी और बेटे को चेचक निकलने के बावजूद भी टीके नहीं लगवाए।

1929 में मोरारजीभाई की नियुक्ति अहमदाबाद में कलक्टर के निजी सहायक के पद पर हुई। मई के महीने में चार्ज संभालने पर उन्होंने पाया कि कार्यालय का काम बिल्कुल अव्यवस्थित था। कर्मचारी लोग सुबह लगभग साढ़े दस

बजे आ जाते और कई तो रात को साढ़े आठ के बाद घर लौटते थे। इतने घंटे काम करने के बावजूद काम का निपटारा नहीं हो पाता था। काम बहुत जमा हो गया था।

मोरारजीभाई ने सभी कर्मचारियों को इकट्ठा करके काम को शीघ्र निपटाने का उपाय समझाया। रोज का काम रोज निपटाने की सलाह दी। वे स्वयं भी लंबित काम को निपटाने में जुट गए। तीन तीन वर्षों से लंबित अपीलों की सुनवाई करके एक ही महीने में निपटारा कर दिया। कर्मचारियों ने भी उनके दिए गए निर्देशों का पालन किया। इसलिए कार्यालय का सारा काम जल्दी ही व्यवस्थित हो गया। अब सब साढ़े पांच बजे ही घर लौटने लगे। मोरारजीभाई सुबह ग्यारह से शाम छह बजे तक बैठते थे। घर पर काम ले जाने की आवश्यकता ही न रही।

12 मार्च 1930 को गांधी जी ने 80 साथियों के साथ दांडीकूच शुरू की, जिसे मोरारजीभाई ने बहुत नजदीक से देखा। अद्भुत दृश्य और लोगों में उमड़ता उत्साह देखकर उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र देने का निर्णय कर लिया। त्यागपत्र देने के लिए केवल उस निर्णय की प्रतीक्षा थी। अगर उससे पहले ही त्यागपत्र दे देते तो सरकार उसका गलत लाभ उठाकर मोरारजीभाई को बदनाम भी कर सकती थी।

सरकार ने निर्णय दे दिया। निर्णय के तहत मोरारजीभाई को वरिष्ठता में नीचे उतार दिया गया था, अतः उन्होंने आखिर में त्यागपत्र दे ही दिया। 19 मई 1930 को उन्होंने अपना त्यागपत्र कलक्टर को भेज दिया। उस दिन शनिवार था। उन्होंने कलक्टर को लिखा, "सरकार ने मेरे विरुद्ध गलत निर्णय लिया है। इससे मेरे साथ अन्याय हुआ है। यह सरकार अन्याय से चल रही है। न्याय दिलाने की उसे चिंता ही नहीं है। जिस समय देश में आजादी का यज्ञ शुरू हुआ हो, तब मेरे जैसा आदमी एक ओर खड़ा खड़ा उसे केवल देखता ही रहे। आराम से जिंदगी जिए तथा देश के हित के विरुद्ध विदेशी सरकार की नौकरी करते हुए उसकी सहायता करे वह शोभा नहीं देता। अब मेरा कोई काम नहीं है अतः मुझे आगामी सोमवार से ही सेवा से मुक्त किया जाए।" इस तरह बारह वर्ष की सरकारी नौकरी उन्होंने छोड़ दी।

मोरारजीभाई के त्यागपत्र से प्रभावित होकर कई मित्रों और परिचितों ने मोरारजीभाई के लिए अभिनंदन समारोह का आयोजन करने का विचार किया लेकिन मोरारजीभाई ने उन्हें ऐसा न करने के लिए मना लिया। इसलिए इस योजना को छोड़ दिया गया। मोरारजीभाई मानते थे कि उन्होंने जो कुछ भी किया वही उनका धर्म था। किसी एक सभा में किसी सज्जन ने बताया कि मोरारजीभाई ने बहुत बड़ा बलिदान दिया है। तो उसी क्षण मोरारजीभाई ने खड़े होकर कहा कि,

''इसमें मैंने कोई बलिदान नहीं दिया है। आज तक देश के ही धन से मैं मौज-मस्ती करता था, जो देशद्रोह का काम था, ईमानदार हिंदुस्तानी विदेशी राज की नौकरी करे यह देश के हित के विरुद्ध है, अतः मैंने केवल अपना धर्म निभाया है। आप कह सकते हैं कि नौकरी का त्याग करके मैं थोड़ा सुधरा जरूर हूं। बाकी मैंने कोई बलिदान नहीं दिया है।''

3

राजनीति में प्रवेश

नौकरी छोड़ने के बाद मोरारजीभाई गांधी जी के आश्रम में रहना चाहते थे। उनको राजनीति की अपेक्षा आश्रम के जीवन में अधिक रुचि थी। आश्रम का जीवन उनके लिए अधिक उपयुक्त था। गांधी जी के विचारों के प्रति वे अधिक आकर्षित थे। उनके अपने विचार भी गांधी जी के विचारों से मेल खाते थे। वे गांधी जी के साथ रहकर जिस भी तरह हो सके, देशसेवा करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने गांधी जी को पत्र लिखकर आश्रम में रहने की अपनी इच्छा व्यक्त की, लेकिन उस समय गांधी जी जेल में थे। पता नहीं उनको यह पत्र मिला भी हो या नहीं, लेकिन मोरारजीभाई को अपने पत्र का कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। अतः यह बात उन्होंने वहीं छोड़ दी। आश्रम के जीवन के बजाय उन्होंने राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया।

नौकरी त्यागने के तुरंत बाद उन्होंने गुजरात प्रदेश कांग्रेस कमेटी में जाकर कांग्रेस की सदस्यता प्राप्त की।

उस समय धारासणा में नमक सत्याग्रह चल रहा था। सत्याग्रह में शामिल होने का उन्होंने दृढ़ निश्चय नहीं किया था। लेकिन सत्याग्रह को प्रत्यक्ष रूप से देखने के लिए वे धारासणा गए तथा वहां सत्याग्रहियों पर पुलिस का निर्मम लाठीचार्ज देखा।

पहला कारावास

नमक सत्याग्रह के बाद किसानों का 'कोई कर नहीं' आंदोलन शुरू हुआ। मोरारजीभाई किसानों को इस आंदोलन में प्रोत्साहित करने के काम में जुट गए। अक्तूबर, 1930 में सरकार ने कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया। उसके कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियां होने लगीं। मोरारजीभाई की भी गिरफ्तारी हुई। उनको तीन महीने के कठोर कारावास की सजा हुई। पहली बार वे जेल गए। उनको साबरमती जेल में रखा गया था।

जेल में मोरारजीभाई को बी-श्रेणी दी गई थी, लेकिन सभी कैदियों ने सी-श्रेणी का भोजन करना ही तय किया। कुछ समय बाद बी-श्रेणी के अन्य कैदियों ने अपनी श्रेणी का भोजन खाना शुरू कर दिया था लेकिन मोरारजीभाई ने सी-श्रेणी का भोजन लेना ही जारी रखा। सी-श्रेणी के कैदियों को मिलने वाला भोजन भला, स्वादिष्ट कैसे हो सकता है ? रोज एक जैसा ही भोजन मिलता था, लेकिन उसी भोजन को स्वादिष्ट समझकर खाने की आदत मोरारजीभाई को थी। खाना खूब चबा चबाकर खाने की आदत उनको थी। कारावास के दौरान अन्य कैदियों के वजन में कमी हो जाती थी लेकिन मोरारजीभाई अपना वजन बढ़ाकर ही कैद से रिहा होते।

मोरारजीभाई जेल के सभी नियमों का पालन करते। नियम के विरुद्ध जाकर, कभी किसी चीज की मांग नहीं करते थे। जेल में जिस तरह का कठोन जीवन जीने की आवश्यकता हो, उस तरह का जीवन जीने के लिए उन्होंने शरीर और मन दोनों को तैयार कर लिया था।

सरदार के साथ तकरार

मोरारजी के जेल से रिहा होने के कुछ समय बाद गांधी जी गुजरात में एक स्थान पर जाने वाले थे। यात्रा संबंधी प्रबंध करने का कार्य गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति के अध्यक्ष श्री वल्लभभाई पटेल ने मोरारजीभाई को सौंपा। चालू प्रवास के दौरान एक अन्य काम भी सौंपा जिसमें गांव के पटवारियों से कुछ जानकारी प्राप्त करनी थी। सरदार ने सोचा होगा कि यह काम मोरारजी कर पाएंगे। लेकिन मोरारजी ने बताया कि कानूनन कोई भी पटवारी इस तरह की जानकारी नहीं दे सकता। अगर हम उनसे कानून के विरुद्ध कार्य करवाएंगे तभी वे इस तरह की जानकारी दे पाएंगे। हो सकता है कि पटवारी लोग कहने से कर भी दें, लेकिन वे स्वयं इसे उचित नहीं मानते हैं। इससे सरदार थोड़े नाराज तो हुए लेकिन उन्होंने इस काम के लिए और जोर नहीं डाला।

1931 में गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति के पदाधिकारियों के चयन के समय कुछ जिला स्तरीय नेताओं ने एक अतिरिक्त सचिव की नियुक्ति के लिए मोरारजीभाई का नाम सुझाया। सरदार अध्यक्ष पद के लिए चुने गए थे, और दो सचिवों का चुनाव भी हो चुका था। अतः एक अतिरिक्त सचिव की नियुक्ति करने की सरदार की इच्छा नहीं थी। उन्होंने यह भी कहा कि मोरारजीभाई अभी अभी ही कांग्रेस में शामिल हुए हैं इसलिए कुछ अनुभव प्राप्त करने के बाद अगर वे किसी पद को संभालें तो अच्छा रहेगा। लेकिन प्रस्ताव रखने वालों ने अपना आग्रह जारी रखा। आखिर में सरदार ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तब से श्री मोरारजीभाई जी.पी.सी.पी. के सविच बन गए और 1937 तक उसी पद पर बने रहे।

सचिव के रूप में काम करने की मोरारजीभाई की अपनी शैली थी। हो सकता है कि सरदार और उनके अन्य साथियों को वह शैली पसंद न आई हो, इसलिए कुछ दिनों बाद महादेवभाई देसाई ने उनको एक पत्र लिखा। पत्र का आशय थां, कि न तो आप सरदार से मिलते ही हैं और न ही उनसे पूछकर काम करते हैं। आपको काम करने की अपनी शैली बदलनी चाहिए। महादेवभाई ने सरदार और मोरारजीभाई दोनों के साथ अच्छे संबंध होने के कारण शायद यह पत्र लिखा था। मोरारजीभाई ने उसके प्रत्युत्तर में लिखा, "मैं सरदार साहब से बराबर मिलता रहता हूं, बिना काम बेकार वहां नहीं बैठता हूं, क्योंकि मुझे इस तरह बिना काम बैठे रहना अच्छा नहीं लगता है। आपके कहने का आशय दरबार में बैठने के लिए कहना हो तो उसे मैं ठीक नहीं मानता हूं। जिस बारे में सरदार साहब को पूछने की आवश्यकता हो और एक अध्यक्ष के रूप में उनके निर्देश लेना जरूरी हो, तो उनसे बिना पूछे मैं कुछ भी नहीं करता हूं। पर जहां पर उनसे पूछने की आवश्यकता न हो, और एक मंत्री के रूप में मुझे अपनी ओर से ही कोई काम करना हो, तो ऐसी स्थिति में मैं उनको तकलीफ नहीं देता हूं। अगर सरदार साहब को मेरी कार्यशैली पसंद नहीं है या जरा-सा भी मेरे काम से असंतोष है तो, उनके इशारे भर से मैं अपने पद से तुरंत हट जाऊंगा।" महादेव भाई ने इस पत्र का जवाब नहीं दिया। हो सकता है कि उन्होंने पत्र में लिखी बात को सही मानकर स्वीकार कर लिया हो या फिर 'यह जिद्दी आदमी किसी की बात नहीं मानेगा' यह समझ कर बात को टाल दिया हो। जो भी हो, मगर मोरारजीभाई ने नम्रतापूर्वक लेकिन दृढ़ता से अपनी बात स्पष्ट कर दी थी।

मोरारजीभाई के काम करने की शैली और सिद्धांतों के आग्रह से उनका सरदार साहब के साथ अक्सर मतभेद और वाद-विवाद होता रहता था। लेकिन सरदार साहब की एक विशिष्टता को मोरारजीभाई भली-भांति जानते थे कि किसी ईमानदार व्यक्ति के साथ उनका चाहे कितना भी मतभेद क्यों न हो और उस व्यक्ति से स्वयं वे कितना भी नाराज क्यों न हों फिर भी सरदार साहब उसे कभी परेशानी में नहीं डालेंगे।

उनके प्रदेश कांग्रेस समिति के सचिव बनने के कुछ समय पश्चात गुजरात में युवा मंडल का गठन हुआ। युवा नेताओं के आग्रह के कारण उसकी अध्यक्षता मोरारजीभाई ने सरदार साहब की स्वीकृति लिए बिना स्वीकार कर ली। सरदार साहब को यह अच्छा तो नहीं लगा होगा। इसलिए एक बार सरदार साहब ने पूछ ही लिया कि, "आप प्रदेश कांग्रेस समिति के सचिव हैं और युवा मंडल के अध्यक्ष भी बन गए हैं, क्या ये दोनों पद एक साथ संभालना ठीक है ?" मोरारजीभाई ने उत्तर में कहा कि, "जवाहरलाल जी अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (ए.आई.सी. सी.) के सचिव होते हुए भी अखिल हिंद युवा मंडल के अध्यक्ष बने हुए हैं। उन्होंने

यह भी कहा, "फिर भी अगर मेरा दो पद पर बने रहना उचित नहीं है तो मैं सचिव के पद से अपना त्यागपत्र दे देता हूं।" यह सुनकर सरदार बात टालते हुए चल दिए।

जेल के कुछ अन्य अनुभव

गांधी जी के दूसरे गोलमेज सम्मेलन से वापस लौटने के कुछ दिनों के भीतर ही उनको गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ अन्य कई नेताओं और कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार किया गया। मोरारजीभाई को भी गिरफ्तार करके साबरमती जेल भेज दिया गया। छह सप्ताह के बाद उनको रिहा किया गया, लेकिन साथ ही साथ ऐसा आदेश भी दिया गया कि उन्हें 12 घंटे के अंदर अंदर अहमदाबाद छोड़ना है। मोरारजीभाई ने आदेश की अवहेलना की इसलिए उनको पुनः गिरफ्तार करके न्यायालय के सामने पेश किया गया। अदालत ने उनको कसूरवार मानकर दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई। इसके अलावा 300 रुपए का जुर्माना भी किया, जुर्माना अदा न करने पर छह महीने की और कैद भुगतने का आदेश दिया।

1932 के दो वर्ष के कारावास का अधिकांश भाग उन्होंने नासिक जेल में बिताया।

वहां पर कुछ सत्याग्रही कैदी गुप्त रूप से अखबार मंगाकर पढ़ते थे, जब कि नियमपालन के आग्रही दो सत्याग्रहियों ने इन सत्याग्रहियों को धमकी दी कि अगर इस तरह गैरकानूनी रूप से अखबार मंगाकर पढ़ने का सिलसिला बंद नहीं किया गया तो वे जेल अधीक्षक को इसके बारे में बता देंगे। इस तकरार से काफी गंभीर और पेचीदा स्थिति पैदा हो गई। मोरारजीभाई ने उन दोनों भाइयों को समझाया कि अगर हम जेल के नियमों का पालन करते हैं तो वह हमारा अपना कर्तव्य है। पर, अन्य कोई उन नियमों को तोड़ता है या नहीं इसकी चौकीदारी का काम हमारा नहीं है। उनके विरुद्ध शिकायत करना हमें शोभा नहीं देता है। हम स्वयं उन अखबारों को न पढ़ें और न ही उन अखबार पढ़ने वालों का बचाव करें। यही हमारे लिए पर्याप्त है। हम सरकार के जासूस नहीं हो सकते।

एक बार एक जेलर ने कुछ सत्याग्रही कैदियों की पिटाई की जिससे एक कैदी की हालत गंभीर हो गई। सभी कैदियों की ओर से मोरारजीभाई जेल अधीक्षक के पास गए और कहा कि यह तो स्पष्ट रूप से फौजदारी मामला बनता है, तथा संगीन अपराध बनता है। इसकी जांच होनी आवश्यक है। जिला मजिस्ट्रेट को इसकी रपट भेजनी पड़ेगी, तथा सिविल सर्जन को बुलाना होगा। अधीक्षक तो घबरा गया, उसने दोनों को सूचित किया। जेलर पर मुकदमा चला और उसे सजा भी हुई।

समाजवादी पार्टी में शामिल नहीं हुए

मोरारजीभाई देसाई जब 1933 में नासिक जेल में थे तब उसी जेल में रहने वाले जयप्रकाश नारायण, मीनू मसाणी, अच्युत पटवर्धन और अन्य युवकों ने मिलकर कांग्रेस के अंदर ही समाजवादी गुट का गठन करने का निश्चय किया। उन लोगों ने मिलकर उस गुट के गठन का प्रारूप तैयार किया। उसमें देश के प्रत्येक प्रांत से अच्छे अच्छे युवा कार्यकर्ताओं को शामिल करने की योजना बनाई गई। सैंतीस वर्षीय मोरारजीभाई गुजरात प्रदेश के युवा कार्यकर्ता तथा युवा संस्था के मुखिया भी थे इसलिए उनको इस गुट में खींचने की भी कोशिशें हुईं।

इन लोगों में से एक कार्यकर्ता मोरारजी को अपने गुट में शामिल होने के विचार से मनाने के लिए मोरारजीभाई के पास आया। कार्यकर्ता ने तो मोरारजीभाई को यहां तक प्रलोभन दिया कि अगर आप हमारे गुट में शामिल होंगे तो आप सरदार वल्लभभाई पटेल का स्थान भी ले सकते हैं। मोरारजीभाई की समझ में आ गया कि ये लोग तरह तरह के प्रलोभन देकर उन्हें अपने गुट में शामिल करने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने उस कार्यकर्ता से कहा कि ऐसे प्रलोभन देकर अगर आप कार्यकर्ताओं को आकर्षित करके गुट का गठन कर भी लेंगे तो भी वह लंबे समय तक नहीं टिकेगा। उन्होंने कहा कि मुझे गांधी जी के विचारों में पूरी श्रद्धा है इसलिए आपके गुट में शामिल नहीं हो सकता। एक ही दल में ऐसे गुटों का पैदा होना और पनपना मोरारजीभाई के विचारों से हितकारी नहीं था। वे मानते थे कि इस प्रकार पार्टी का संगठन कमजोर होगा।

अक्तूबर में मोरारजीभाई को रिहा किया गया। कुछ समय बाद उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। इस बार उन्हें 15 दिन साबरमती जेल में और फिर यरवदा जेल में रखा गया।

जुलाई 1934 में सत्याग्रह आंदोलन स्थगित कर दिया गया। उस समय सभी सत्याग्रही बंदियों को रिहा कर दिया गया।

समाजवाद के पक्षधर युवाओं ने रिहा होते ही कांग्रेस के भीतर ही कांग्रेस समाजवादी दल नामक नए गुट का गठन किया। दल की शाखा गुजरात में भी खोली गई। मोरारजीभाई को युवा दल के अध्यक्ष बनाने वाले अधिकतर युवा कार्यकर्ता उस दल में शामिल हो गए थे। उन्होंने मोरारजीभाई को अपने साथ शामिल होने के लिए बहुत समझाया, लेकिन मोरारजीभाई ने उन लोगों को अलग गुट के गठन से होने वाले नुकसान के बारे में समझाया। पर युवा कार्यकर्ता नहीं माने फिर भी मोरारजीभाई उस गुट में शामिल नहीं हुए।

नासिक जेल में मोरारजीभाई को समाजवाद-साम्यवाद के बारे में कुछ ग्रंथ पढ़ने का अवसर मिला था। इससे उनको एक दिलचस्प बात जानने को मिली कि

विश्व में कुल मिलाकर 56 प्रकार के समाजवाद हैं। इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद साम्यवाद के प्रति उनका जरा भी आकर्षण नहीं रहा, उसके बदले गांधी विचारधारा में उनकी अधिक श्रद्धा पनपी। उस जेल में उन्होंने ऍलेक्सिस केरोल की पुस्तक 'मोरल मैन और इममोरल सोसायटी' पढ़ी। उस पुस्तक के पढ़ने से उनके इस विचार को पुष्टि मिली कि समाज चाहे कैसा भी नीतिहीन क्यों न हो, लेकिन व्यक्ति अवश्य नीतिवान बन सकता है।

कैद से रिहा होने के बाद

मोरारजीभाई के नासिक जेल से रिहा होने के बाद और पुनः गिरफ्तार होने से पहले गांधी जी ने उनको वर्धा बुलाया था। गांधी जी उनके साथ कुछ मुद्दों को लेकर बातें करना चाहते थे। उन दिनों गांधी जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। आराम की आवश्यकता थी। इसलिए गांधी जी से मिलने आए किसी भी व्यक्ति को जमनालाल बजाज रोक देते। उन्होंने मोरारजीभाई को भी रोका और कहा कि किसी को अंदर जाने की अनुमति नहीं है, आप क्यों आए हैं ? मोरारजीभाई ने कहा कि "मैं अपनी इच्छा से नहीं आया हूं, बापू के बुलाने पर आया हूं, फिर भी अगर आप कहते हैं तो लौट जाता हूं।" उनको रोक कर जमनालाल जी बापू से पूछने गए। बापू ने मोरारजीभाई को अंदर भेजने के लिए कहा। फिर भी, जमनालाल जी ने चेतावनी दी कि एक घंटे से अधिक मत बैठना। बातचीत में घंटा खत्म हो गया इसलिए जमनालाल जी भीतर आए, मोरारजीभाई उठने लगे, तो गांधी जी ने कहा, "बैठो, अभी और बातें करनी हैं।" तथा और आधा घंटा निकल गया।

इससे बिल्कुल विपरीत एक और घटना दो-तीन वर्ष पश्चात घटी। 1837 में गांधी जी पुनः बीमार हुए, उस समय वे तीथल में आराम कर रहे थे। सरदार साहब ने चौकीदारी के लिए मोरारजीभाई को बिठाया था। तभी एक दिन जमनालाल जी आ गए। मोरारजीभाई कुछ कहने के बजाए बापू से पूछने गए और जमनालाल जी को भीतर ले गए। उस वक्त उन्होंने मोरारजीभाई से कहा, "आपने तो मुझे अच्छा सबक सिखाया।" "मैं आपको सबक सिखाने वाला कौन होता हूं ? आप अपने तरीके से काम करते हैं तो मैं अपने तरीके से," मोरारजीभाई ने उत्तर में कहा।

1930 से 1934 की अवधि के दौरान मोरारजीभाई का अधिकांश समय जेल में गुजरा था इसलिए बच्चों को उनका सानिध्य नहीं मिल पाया था। अबकी बार यरवदा जेल से रिहा होने के समय सत्याग्रह वापिस ले लिया गया था, इसलिए कोई विशेष कामकाज नहीं रहता था। अतः बच्चों के साथ अधिक समय व्यतीत किया जा सकता था।

उस समय वे अहमदाबाद में अपने छोटे भाई अंबेलाल के यहां रहते थे।

यह घर रायपुर क्षेत्र में भाई शंकर की हवेली में पहली मंजिल पर था। पर बच्चे तीसरी मंजिल की छत पर रात को जाने से डरते थे। बचपन में वे खुद भी ऐसे ही डरते थे, उसे याद करके मोरारजीभाई ने बच्चों में रहे डर को निकालने के प्रयत्न शुरू किए। वे तरह तरह के बहाने और विभिन्न तरीकों से, जैसे कभी बच्चे को अकेले तो कभी दो दो बच्चों को जबरन छत पर भेजने लगे। उनके बीच कभी स्पर्धा कराते तो कभी दबाव डालते, कभी जबरन भी भेजते। इस तरह उन्होंने बच्चों का डर दूर किया।

एक अन्य समस्या उससे भी ज्यादा दुखद थी। उनकी दो लड़कियां विद्यालय में पढ़ती थीं। उनके विद्यालय में अन्य बच्चों के साथ उन्हें भी फिल्म शो देखने के लिए जाने को कहा गया। विद्यालय की ओर से उसके लिए छात्रों से पैसे मंगाए गए थे। मोरारजीभाई ने बच्चों से कहा कि "हमारे पास पैसा नहीं है इसलिए आपको शिक्षिका से बता देना चाहिए कि हम पैसे नहीं ला सकते।"

लड़कियों ने कहा, "शिक्षिका ने हम पर व्यंग्य किया है कि आप तो भिखारी हैं। हमें उससे दुख हुआ है।"

मोरारजी ने समझाया, "आपको उनसे नम्रता से कहना चाहिए था कि हमें भिखारी नहीं होना है, तभी तो हम ऐसा खर्च नहीं करते। गरीबी स्वीकार करने में हमें कोई संकोच नहीं बरतना चाहिए। गरीबी के अनुरूप ही हमें अपना खर्च करना चाहिए तभी हम स्वाभिमान से जी सकेंगे।"

पता नहीं बच्चे यह बात समझ पाए या नहीं, लेकिन उन्होंने फिर कभी उस बात को याद नहीं किया और न ही फिर कभी ऐसी मांग की।

डाकोर के मंदिर में प्रवेश नहीं किया

खेड़ा जिला के डाकोर नगर में लगातार दो वर्ष तक प्लेग की महामारी का प्रकोप रहा। 1933 में पहली बार प्लेग फैला तब नेता लोग जेल में थे, इसलिए वे कुछ नहीं कर सके। 1934 में वे रिहा हो गए। सरकार की तरफ से प्लेग के विरुद्ध कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठाए गए थे। सरदार वल्लभभाई पटेल ने डाकोर नगर में प्लेग उन्मूलन के लिए एक छावनी लगाई। इसके जरिए एक ओर सफाई का काम शुरू किया गया, जनता को सफाई की समझ तथा उसे कैसे रखा जाए इसकी जानकारी एवं आवश्यक निर्देश दिए गए। तो दूसरी ओर प्लेग के टीकाकरण के लिए कदम उठाए गए। छावनी के लगभग सभी स्वयं-सेवकों ने टीके लगवाए लेकिन सरदार साहब और मोरारजीभाई देसाई ने टीके नहीं लगवाए। हालांकि वे दोनों इस काम में लगे हुए थे।

छावनी में चार महीने तक कार्य चला, तब तक नगर की सफाई पूरी हो चुकी थी तथा प्लेग भी समाप्त हो चुका था।

उसी वर्ष केंद्रीय विधानसभा का चुनाव होने वाला था। गुजरात से एक सीट थी जिस पर कांग्रेस ने भूलाभाई देसाई को अपना उम्मीदवार बनाया था। अधिकृत रूप से कांग्रेस पहली बार केंद्रीय विधानसभा का चुनाव लड़ रही थी। गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति के सचिव के रूप में मोरारजीभाई ने चुनाव प्रचार के लिए गुजरात के सभी जिलों का दौरा किया।

इस प्रवास के दौरान श्री मोरारजीभाई देसाई को डाकोर भी जाना पड़ा। मोरारजीभाई और उनके दल को किसी ने डाकोर के मंदिर में दर्शन के लिए जाने का सुझाव दिया, लेकिन उन दिनों डाकोर के मंदिर में हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलता था। मोरारजीभाई ने नियम बना रखा था कि जिस मंदिर में हरिजनों को प्रवेश न मिले उस मंदिर में दर्शन के लिए मैं नहीं जाऊंगा, इसलिए वे डाकोर के सुप्रसिद्ध मंदिर में नहीं गए। कई लोगों ने यह आशंका भी व्यक्त की थी कि, मोरारजीभाई के मंदिर में दर्शन के लिए न जाने से चुनाव में मतदाताओं पर उल्टा प्रभाव पड़ सकता है लेकिन मोरारजीभाई अपने नियम के प्रति अडिग रहे तथापि चुनाव पर इस घटना का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा और भूलाभाई देसाई चुन लिए गए।

1936 में बंबई में कांग्रेस महासमिति (ए.आई.सी.सी.) का अधिवेशन हुआ था। जवाहरलाल नेहरू ने उस वर्ष कांग्रेस के अधिवेशन में एक प्रस्ताव पेश किया। उसमें यह मांग की गई थी कि महासमिति का सारा कार्य हिंदी में ही हो। मोरारजीभाई ने प्रस्ताव भी हिंदी में ही लिखा था। उन्होंने अध्यक्ष से उस प्रस्ताव को पेश करने की अनुमति मांगी, लेकिन नेहरू ने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनका कहना था कि प्रस्ताव की हिंदी भाषा सही नहीं है। उस समय मौलाना अबुल कलाम आजाद वहां बैठे थे, उन्होंने नेहरू से कहा कि, आपकी हिंदी उससे ज्यादा अच्छी कहां है ? आखिर में मोरारजीभाई को प्रस्ताव रखने की अनुमति मिली और वह प्रस्ताव पारित भी हुआ।

4
मुंबई मंत्रिपरिषद में

1937 की मुंबई विधानसभा के चुनाव में सूरत जिले से चार सीटें थीं। उस समय उन चारों सीटों का एक संयुक्त मतदाता विभाग था। भीमभाई देसाई नाम का एक उम्मीदवार बड़ा ताकतवर और दादा किस्म का माना जाता था। उसको केवल मोरारजी देसाई ही परास्त कर सकते थे इसलिए एक बैठक में मोरारजीभाई देसाई को उम्मीदवार बनाया गया। चारों सीटें संयुक्त होने से यह भी संभव था कि एक सीट पर मोरारजीभाई चुने जाएं और दूसरी सीट पर भीमभाई देसाई। लेकिन कांग्रेस का मानना था कि भीमभाई देसाई की पराजय ही कांग्रेस की पूरी विजय कही जाएगी।

मोरारजीभाई प्रचार के लिए जिले भर के गांव गांव में घूमे, लोगों से मिले, सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिए। उन्होंने जनता को कांग्रेस के कार्यक्रम और सिद्धांतों की जानकारी दी। परिणामस्वरूप चुनाव परिणाम पूर्णतः कांग्रेस के पक्ष में आया। कांग्रेस के चारों प्रत्याशी विजयी रहे और भीमभाई देसाई हार गए।

मुंबई प्रदेश विधानसभा की 175 सीटों में से कांग्रेस ने 87 सीटें प्राप्त कीं जो स्पष्ट बहुमत से एक सीट कम थी, उससे तो निपटा जा सकता था, लेकिन गवर्नर अपने विशिष्ट अधिकारों का प्रयोग न करें इस बात को लेकर वायसराय और कांग्रेस में मतभेद था। गवर्नरों ने गैर कांग्रेसी सरकारों का गठन भी कई राज्यों में किया था, लेकिन वे अल्पमत सरकारें छह माह से ज्यादा नहीं चल सकती थीं। छह माह के भीतर विधानसभा का सत्र बुलाना आवश्यक था तथा अल्पमत सरकारें विधानसभा का सामना नहीं कर सकती थीं। कुछ समय तक गवर्नर अपने विशिष्ट अधिकारों का प्रयोग न करे इस तरह का वायसराय के साथ समझौता हुआ और कांग्रेस ने सरकारों का गठन करना स्वीकार किया।

मुंबई विधानसभा में कांग्रेस पार्टी के नेता के रूप में बाला साहब खेर (बी. जी. खेर) चुने गए। मंत्रीपरिषद में किस किस को शामिल किया जाए उसके बारे

में विचार करने के लिए संसदीय बोर्ड के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल और खेर साहब के बीच मंत्रणा हुई। मोरारजीभाई देसाई को सूरत में वल्लभभाई पटेल का तार मिला। उनको मुंबई बुलाया गया था। सरदार चाहते थे कि मोरारजीभाई देसाई प्रदेश कांग्रेस समिति का काम करें तथा उनके बदले भरूच के दिनकर राय देसाई को मंत्रिपरिषद में शामिल किया जाए। अन्य नेता इस मत के थे कि मोरारजी को ही मंत्रिपरिषद में लिया जाए।

मोरारजीभाई ने जब सरदार साहब से भेंट की तो सरदार साहब ने कहा, "मंत्रिपरिषद में दिनकर राय देसाई को शामिल करने के बारे में आपकी क्या राय है ?"

मोरारजीभाई ने उत्तर दिया, "आपका निर्णय मेरे लिए शिरोधार्य होगा। मेरी अन्य राय हो ही नहीं सकती।"

"दिनकर भाई क्या कहेंगे ?"

"हमारा रिश्ता ऐसा है कि मुझे छोड़कर वे शायद मंत्रिपरिषद में शामिल होना स्वीकार न भी करें, लेकिन अगर वे मना करेंगे तो मैं उन्हें समझाऊंगा।"

"यह संभव है, लेकिन गुजरात के कांग्रेसियों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?"

"उसका आकलन तो आपको ही करना होगा। मैं अगर कुछ कहता हूं तो उसका मतलब कुछ और ही निकाला जाएगा। इसलिए आपको ऐसा मुझसे नहीं पूछना चाहिए। ऐसा करने से मेरे साथ अन्याय होगा।"

इतनी बातें होने पर भी सरदार साहब ने आगे पूछा, "आपके जो भी विचार हों, आप मुझे साफ साफ बताइए।"

"ऐसा हो सकता है कि लोगों में ऐसी धारणा पनपे कि आप मुझे मंत्रिपरिषद में शामिल करना ही नहीं चाहते हैं, उनको ऐसा भी लग सकता है कि इसीलिए आपने यह सारा प्रबंध किया है। लेकिन उससे चिंता की कोई बात नहीं है, क्यों कि मैं लोगों को समझा दूंगा कि संगठन के काम के लिए मेरा सरकार से बाहर रहना जरूरी है।"

इसे सुनकर सरदार साहब बोले, "अगर यह संभव है, तो कुछ और विचार करना आवश्यक नहीं है, आपको ही मंत्रिपरिषद में शामिल होना चाहिए।"

मंत्री के रूप में आचरण

मोरारजीभाई मुंबई मंत्रिपरिषद में राजस्व विभाग के मंत्री बने। सात सदस्यों की उस मंत्रिपरिषद में बाला साहब खेर मुख्यमंत्री थे। कन्हैया लाल मुंशी गृहमंत्री थे। डा.डी.डी. गिल्टर स्वास्थ्य और नशाबंदी विभाग के मंत्री थे। अण्णासाहब लट्ठे वित्तमंत्री थे। श्री लट्ठे के पास पर्याप्त काम नहीं था जब कि मोरारजीभाई के पास राजस्व, कृषि एवं वन तथा सहकार इस तरह तीन विभाग थे इसलिए कुछ समय

पश्चात कृषि एवं ग्राम विकास विभाग लट्ठे को सौंप दिए गए। फिर भी अपने विभागों में से एक विभाग किसी और को दिए जाने का कोई रंज मोरारजीभाई को नहीं था।

उस समय गांधी जी ने मंत्रियों के लिए रु. 500/- तक ही वेतन की सीमा सुझाई थी। मोरारजीभाई से उन्होंने कहा, "आप तो पांच सौ रुपए से भी कम लेकर अपना काम चला लेंगे।" मोरारजीभाई ने इसके उत्तर में कहा, "मेरे साथी मंत्री लोग जिस तरीके से जीने के आदी हैं, उसे देखते हुए उन्हें पांच सौ रुपए में गुजारा करना मुश्किल होगा, उससे कम वेतन से काम चलाना उनके लिए संभव नहीं होगा। मैं तो कम खर्च में रहने का आदी हूं। इसलिए कम वेतन से अपना जीवन चला सकूंगा, लेकिन केवल मैं अकेला ही कम वेतन लूंगा तो मेरे साथियों की आलोचना होगी जो अनुचित होगा। मैं आवश्यकता से अधिक खर्च नहीं करूंगा। वेतन से जो कुछ बचत होगी उसे और आज तक जो कुछ भी बचत की है, उसे मैं अपनी संतानों को उत्तराधिकार में नहीं दूंगा, लेकिन समाज सेवा के कार्यों के लिए बने ट्रस्ट को सौंप दूंगा।" गांधी जी को मोरारजीभाई की बात सही लगी। उन्होंने मोरारजीभाई से कम वेतन के लिए कोई अधिक आग्रह नहीं किया।

मोरारजीभाई ने राजस्व विभाग में बारह वर्ष तक डिप्टी कलक्टर के रूप में काम किया था। इसलिए विभाग की छोटी छोटी बातों से भी वे परिचित थे। कलक्टर की नियुक्ति के प्रस्ताव उनके द्वारा मुख्यमंत्री के पास भेजे जाते। मुख्य सचिव मोरारजीभाई से पूछे बिना ही प्रस्ताव तैयार करके भेज देते थे। मुख्य सचिव के साथ अच्छा रिश्ता रखने वालों को महत्वपूर्ण जिलों में रखा जाता था। किस जिले के लिए कौन अधिक उपयुक्त है, उस पर ध्यान ही नहीं दिया जाता था।

मोरारजीभाई चाहते थे कि मुख्य सचिव ऐसे प्रस्ताव भेजने से पहले राजस्व मंत्री से परामर्श करें। उन्होंने मुख्य सचिव से कुछ कहे बिना ही इसे लागू करने के लिए एक तरीका अपनाया। वे मुख्य सचिव के प्रस्ताव को काटकर दूसरे प्रस्ताव मुख्यमंत्री को भेजने लगे। मुख्यमंत्री मोरारजीभाई के प्रस्तावों को स्वीकार कर लेते। मुख्य सचिव समझ गया कि मोरारजीभाई उनका खेल समझ गए हैं। फिर मोरारजीभाई ने मुख्य सचिव को समझाया कि जिस स्थान के लिए जो व्यक्ति अधिक उपयुक्त हो, जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता हो, उसकी वहीं पर ही नियुक्ति की जानी चाहिए। इसके लिए वरिष्ठता को देखने की भी आवश्यकता नहीं है। उसके बाद मुख्य सचिव ने मोरारजीभाई की राय जानकर ही प्रस्ताव भेजना शुरू किया।

उस जमाने में सरकारी अधिकारी मंत्रियों के अधिकार अपने ही हाथ में रखकर काम करना चाहते थे। मोरारजीभाई ने ऐसे अधिकारियों को उनका सही स्थान दिखाया, जिससे वे सीधे हो गए।

सचिवों के साथ अपनी पहली ही बैठक में मोरारजीभाई ने उनको मीठी लेकिन स्पष्ट भाषा में बता दिया कि सचिवों ने मंत्रियों को केवल सलाह देनी है और मंत्रियों के आदेश को लागू करना है। गोरे सचिवों के लिए यह नया अनुभव था।

पुराने मुख्य सचिव के स्थान पर नए गोरे मुख्य सचिव को भी मोरारजी ने एक सबक सिखाया। नौकरी पर उपस्थित होने के बाद वह कार्यालय में मोरारजीभाई से मिलने के लिए आया। वह हाथ में पाईप लेकर धूम्रपान करते हुए आया। लेकिन मोरारजीभाई की सूरत देखकर वह समझ गया कि यह मोरारजीभाई को अच्छा नहीं लगा है। उन्होंने पाईपं को अपनी जेब में रख लिया। उसके बाद दोनों के बीच हुई बातचीत के दौरान मोरारजीभाई ने उस गोरे अधिकारी से पूछा, "आप जब गवर्नर से मिलने के लिए जाते हैं तब क्या पाईप पीते हुए जाते हैं ?"

"जी नहीं।"

"तब तो आपको मंत्रियों के साथ भी वही व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि अब सरकार गवर्नर नहीं, मंत्री चलाते हैं।"

गोरा समझ गया और नए हालात के अनुकूल हो गया।

कांग्रेसी मंत्रिपरिषद का गठन हुआ तब मुंबई के गवर्नर लार्ड ब्रेबोर्न थे। तीन महीने के पश्चात उनका समय समाप्त होने पर तबादला हो गया। उनके स्थान पर सर रोजर लम्ली की नियुक्ति हुई। अब तक नए गवर्नर का स्वागत बड़े धूमधाम से किया जाता था। कांग्रेसी मंत्रियों ने ऐसे समारोहों में सम्मिलित न होने का नियम बनाया था। लार्ड ब्रेबोन ने सलाह दी थी कि मंत्रियों को आने वाले गवर्नर के स्वागत समारोह में हिस्सा लेना चाहिए, लेकिन मंत्रियों की आपत्ति भी वे समझते थे। आखिर उन्होंने ही रास्ता निकाला। मंत्रीगण दूसरे रास्ते से प्लेटफार्म पर पहुंच जाएंगे और गवर्नर का आगमन होने पर मिल लेंगे। उनका स्वागत करेंगे, और फिर निकल जाएंगे। सलामी एवं अन्य विधियों से अलग रहेंगे। मंत्रियों ने पुराने गवर्नर की सलाह मान ली, वे न तो शिष्टाचार छोड़ना चाहते थे, और न ही आडंबर में सम्मिलित होना चाहते थे। इस प्रकार उनकी ये दोनों इच्छाएं पूर्ण हुईं।

तुरंत निर्णय शक्ति

नए मंत्रिमंडल ने सत्ता के सूत्र संभाले और उसी वर्ष पंचमहाल और बीजापुर जिलों में सूखा पड़ा। सरकार ने इन दोनों जिलों को अकाल पीड़ित क्षेत्र घोषित कर दिया। वहां पर अकाल से निपटने के लिए मजदूरी के काम शुरू किए गए। मोरारजीभाई ने राजस्व विभाग संभालने के तुरंत बाद इन जिलों का दौरा किया। दोनों जिलों में मजदूरों को रोजाना छह पैसे दिहाड़ी मिलती थी। मोरारजीभाई को लगा कि मजदूरी की दर बहुत कम है, उसे बढ़ाया जाना चाहिए। उन्होंने अपने साथ गए

अधिकारियों से पूछा कि क्या यह दर बढ़ाई जा सकती है ? उन लोगों ने बताया कि फेमिन कोड (सूखा नियमावली) के तहत तो इसे बढ़ाया जाना नामुमकिन है। मोरारजीभाई ने तो उस समय अधिक चर्चा नहीं की, लेकिन लौटने के बाद उन्होंने राजस्व सचिव को बुलाकर कहा, "अकाल पीड़ित मजदूरों को दिहाड़ी बहुत कम मिल रही है, उसे बढ़ाया जाना चाहिए।" राजस्व सचिव का उत्तर था, "फेमिन कोड के अनुसार उसे बढ़ाया जाना संभव नहीं है।"

बारह वर्ष तक डिप्टी कलक्टर का काम कर चुके मोरारजीभाई ऐसे नियमों के दांव-पेंच जानते थे। उन्होंने राजस्व सचिव से पूछा, "फेमिन कोड किसने बनाया है ? विधानसभा ने या प्रशासन ने ?"

"प्रशासन विभाग ने।"

"उसमें संशोधन कौन कर सकता है ?"

"सरकार।"

"सरकार माने कौन ?"

"राजस्व विभाग के मंत्री इसके लिए आदेश दे सकते हैं।"

जवाब सुनकर मोरारजीभाई ने कहा, "तो इस कोड में संशोधन करके मजदूरी की उचित दरें बनाने के लिए मैं आदेश देता हूं।"

इस पर राजस्व सचिव ने कहा, "और विचार करने पर मुझे लगता है कि वर्तमान नियमों के अंतर्गत ही इस तरह का परिवर्तन किया जा सकता है।"

"अरे साहब आपने पहले से ही ऐसा कहा होता !" फिर उन्होंने आदेश दिया, "किसी भी मजदूर को तीन आने से कम मजदूरी न मिले इस तरह का संशोधन करके सभी जिला अधिकारियों को आदेश दिया जाए।"

आदेश लागू हुआ। तीन आने से कम मजदूरी किसी को भी न मिले इस तरह का प्रबंध किया गया तथा निर्धारित काम से अधिक काम करने वालों को अधिक मजदूरी मिलने लगी।

जनता का हित सर्वोपरि

वर्तमान नियम के कारण जब जनता के प्रति अन्याय होता हो तब इसे एक तरफ रखने या उसमें संशोधन करने का कार्य और कभी कभी तो कानून को भी जनता के हित के लिए ताक पर रखने का कार्य मोरारजीभाई को करना पड़ता था। नियम पालन के सख्त आग्रही व्यक्ति का ऐसा आचरण किसी को भी विचित्र तो लगेगा ही लेकिन उनकी कार्यशैली ही ऐसी थी जिसमें जनता के हित को सर्वोपरी माना जाता था। इसका एक उदाहरण देखें—"वर्ष 1937-38 में वर्षा कम होने के कारण गुजरात के कई जिलों में चारे की कमी हो गई। थाणे जिले के पालघर में घास काफी थी। मुंबई सरकार अपने इस जिले से दूसरे जिलों में घास भेजती थी। उसी

साल काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में भी घास की कमी थी। वहां की देशी रियासतों की ओर से रेजिडेंट पालघर से पर्याप्त घास खरीदकर रेलवे के जरिए राजकोट की ओर भेजते थे। अधिक मांग के कारण घास के मूल्य बढ़ गए थे, परिणामस्वरूप गुजरात के जिलों में घास भेजना कठिन हो गया था, अब क्या किया जाए ?''

घास की खरीद पर प्रतिबंध लगाना कानून के अनुसार संभव नहीं था, लेकिन मुंबई राज्य की घास अन्य राज्यों में बेची जाए और मुंबई राज्य के ही पशु बिना घास भूखों मरें, यह कैसा अन्याय ? मोरारजीभाई के अधीन अधिकारी वर्ग में से कोई इसका उपाय नहीं ढूंढ़ पा रहा था। आखिर में मोरारजीभाई ने स्वयं ही एक अनूठा उपाय ढूंढ़ निकाला। राज्य की सीमा से निकलने वाली गाड़ियों को रोकने का अधिकार राज्य सरकार को था। घास की आवश्यकता अहमदाबाद जिले को थी। मोरारजीभाई ने वहां के गोरे कलक्टर को फोन पर कहा, ''घास के डिब्बे जो सौराष्ट्र की ओर जा रहे हैं उन्हें अहमदाबाद में रोक दें। और घास आप अपने जिले के लिए ले लें।''

अहमदाबाद जिला कलक्टर ने गाड़ियों को रोककर कुछ डिब्बों की घास का वितरण कर दिया। इस बात का पता लगने पर देशी रियासतों के रेजिडेंट ने मुंबई के मुख्य सचिव से शिकायत की। मुख्य सचिव ने मोरारजीभाई से कहा, ''आपका आदेश गैर कानूनी है।'' मोरारजीभाई का उत्तर था, ''मैं यह जानता हूं, फिर भी मैंने आदेश दिया है।''

''तब क्या किया जाए ?''

''आप रेजिडेंट से कहिए कि वे अपने प्रतिनिधि को यहां भेजें। मैं उनसे बात करूंगा।''

रेजिडेंट ने अपने सचिव को भेजा। सचिव ने आकर कहा, ''आपने हमारी घास गैर कानूनी तरीके से हथिया ली है। उसका मुआवजा आपको देना होगा ?''

मोरारजीभाई ने कहा, ''आप मुंबई सरकार के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर सकते हैं, लेकिन उस दावे के निपटान में दो वर्ष लग ही जाएंगे। तब तक घास का उपयोग हम करते रहेंगे और फिर निर्णयानुसार आपको भुगतान कर देंगे।'' वह आदमी मोरारजीभाई की ऐसी बात सुनकर दंग रह गया। क्या कहे, यह उसकी समझ में ही नहीं आया। मोरारजीभाई ने आगे कहा, ''अगर आप चाहते हैं तो दोनों के लिए लाभकारी हो ऐसा सुझाव मैं दे सकता हूं।''

''बताइए।''

''हम यह घास अपनी आवश्यकतानुसार बांट लें, उसी तरह पालघर में जो घास है उसे भी हम बांट लें। लेकिन उस पर एक शर्त होगी, कि जो कुछ हो चुका है उसके लिए आपको कोई शिकायत नहीं होगी और आपको आश्वासन देना होगा कि आप अपने अधिकारों को छोड़ रहे हैं।''

तात्विक दृष्टि से देखा जाए तो यह एक तरह की ब्लैकमेलिंग ही दिखाई देगी, लेकिन प्रतिपक्ष ऐसी दशा में था कि उसके लिए स्वीकार करने के अलावा और कोई चारा ही नहीं था। मोरारजीभाई के सुझाव के अनुसार तकरार को निपटाया गया। इस तरह का भी हल निकल सकता है यह बात मुख्य सचिव और राजस्व सचिव दोनों की कल्पना और समझ से परे की बात थी।

फरवरी, 1938 में सूरत जिले के हरिपुरा गांव में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। जिस भूमि पर अधिवेशन होना था वह भूमि किसी की निजी संपत्ति थी और खेती की भूमि थी। इसलिए उसका उपयोग अधिवेशन के लिए करने से उस पर गैर कृषि भूमि कर निर्धारित किया जाना था। इस काम के लिए मोरारजीभाई ने उत्तरी विभाग के कमिश्नर गेरेट को हरिपुरा बुलाया। जमीन की जांच और आपसी बातचीत के बाद वे ऐसे निर्णय पर पहुंचे कि इस भूमि में केवल घास ही पैदा होती है इसलिए गैर कृषि कर भी खेती भूमि राजस्व के बराबर ही लेना कानून के अंतर्गत उचित होगा।

कमिश्नर ने अहमदाबाद जाकर सामान्य कृषि योग्य भूमि राजस्व से दुगना कर लगाया। मोरारजीभाई ने कारण जानना चाहा तो गेरेट ने कहा कि यह आदेश तो हमारे बीच बात हुई उससे पहले ही जारी किया जा चुका था। मोरारजीभाई ने उसे मुंबई बुलाया तथा उन्होंने आदेश पर लगी तिथि एवं हरिपुरा में हुई मुलाकात की तिथि दोनों बताईं। इससे स्पष्ट होता था कि आदेश बाद में ही हुआ था। जो अधिकारी ऐसे उच्च पद पर बैठे हुए किसी मंत्री के समक्ष जानबूझ कर झूठ बोलता है उसको उस उच्च पद पर कैसे रखा जा सकता है ? उन्होंने मुख्यमंत्री बाला साहब खेर की तरफ से गवर्नर को एक नोट भिजवाया, जिसमें सारी बातें बताई गईं तथा कमिश्नर को बरखास्त करने की मांग की गई। गवर्नर ने भी माना कि दोष कमिश्नर का है अतः गेरेट को छुट्टी पर भेज दिया गया।

किसानों को भूमि वापस दिलवाई

1930 और 1932 के आंदोलनों के दौरान गुजरात में बारदोली और अन्य कई स्थानों के किसानों ने 'ना-कर' की लड़ाई लड़ी थी। जिससे सरकार ने उन किसानों को उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया था। जिनमें से कुछ जमीन सरकार ने छीन कर दूसरे लोगों को बेच भी दी थी। कांग्रेस ने किसानों को आश्वासन दिया था कि जब हमारे पास सत्ता आएगी तब उनकी जमीन वापस दिलाएंगे। सरदार साहब ने तो यहां तक कहा था कि आपकी जमीन आपके द्वार खटखटाते हुए वापिस आएगी। दूसरी ओर सरकारी अधिकारियों ने भूमि खरीदने वालों से कहा था कि आपसे यह जमीन अब कोई वापिस नहीं ले सकेगा। इस प्रकार बात उलझ गई थी। पुराने गवर्नर ब्रेबोर्न और नए गवर्नर लम्ली दोनों भूमि लौटाए जाने के विरुद्ध

थे। उनके लिए यह ब्रिटिश सरकार की प्रतिष्ठा का सवाल बन गया था, दूसरी ओर कांग्रेस के लिए भी यह प्रतिष्ठा का सवाल था। राजस्व विभाग के मंत्री के रूप में इस समस्या को हल करने का काम मोरारजीभाई की जिम्मेदारी थी। उन्होंने गवर्नर के अस्थायी पद पर काम कर रहे पुराने गवर्नर लार्ड ब्रेबोर्न के साथ विचार-विमर्श किया तथा खरीदने वालों से भी बातचीत की। भूमि खरीदने वालों से यह भूमि किस कीमत वापस ली जाए यह भी सोचने का विषय था। इस समस्या को हल करने के लिए मोरारजीभाई ने कुछ हद तक कानून की मदद ली तो कुछ कुछ समझा बुझाकर समझौते से काम लिया। भूमि वापिस लेकर पुराने किसानों को लौटा दी। मोरारजीभाई की दृढ़ता और समझाने बुझाने की कुशलता के कारण इस उलझन को सुलझा लिया गया और कांग्रेस के नेताओं की ओर से किसानों को दिए गए आश्वासन का पालन भी किया जा सका।

गांधी इर्विन समझौते के दौरान वायसराय ने स्वीकार किया था कि जिन सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारियों ने आंदोलनों के दौरान त्यागपत्र दिए थे उनको सरकार की ओर से पेंशन दी जाएगी। इर्विन के बाद आए वायसराय विलिंग्डन ने पेंशन देने से इंकार कर दिया। जो गांधी-इर्विन समझौते का उल्लंघन था। 1932 में पुनः सत्याग्रह शुरू हुआ, इसलिए कांग्रेसी नेताओं ने पुनः पेंशन की बात नहीं उठाई लेकिन अब, जब कांग्रेस ही सत्ता में आई थी, तब पेंशन के बारे में निर्णय करने का दायित्व उसका था। त्यागपत्र देनेवाले अधिकतर राजस्व विभाग के अधिकारी थे। इसलिए मोरारजीभाई का विभाग उसमें ज्यादा शामिल था। उन्होंने उन कर्मचारी/अधिकारियों को पेंशन देने का निर्णय किया। जो कर्मचारी नौकरियों में वापस आना चाहते थे, उनको बीच की अवधि के दौरान जो प्रोन्नति मिल सकती थी उन प्रोन्नतियों के साथ उन लोगों को वापिस ले लिया गया। सरकार के इस निर्णय से स्वयं मोरारजीभाई को 150 रुपए की मासिक पेंशन मिल सकती थी, लेकिन उन्होंने उसे नहीं लिया।

मुंबई प्रदेश के मंत्रिमंडल ने राज्य में शराबबंदी लागू करने का निर्णय किया। यह मामला जिस मंत्रालय में आना था, उस उत्पाद शुल्क विभाग के मंत्री एक पारसी सज्जन डा.डी.डी. गिल्टर थे। सब मंत्री शराबबंदी लागू करने के पक्षधर थे। मोरारजीभाई ने तो बचपन में ही भदेली में शराब की बुराई के कारण लोगों की हो रही बरबादी अपनी आंखों से देखी थी, इसलिए उस समय ही शराब के अड्डे बंद करने की बात उनके मन में आ गई थी।

शुरू में मुंबई और अहमदाबाद इन दो बड़े शहरों में शराबबंदी लागू की गई। शराबबंदी के कारण होने वाले करों के घाटे की पूर्ति के लिए संपत्ति कर (प्रोपर्टी टैक्स) लगाया गया।

उत्पाद शुल्क विभाग के कमिश्नर श्री नाइट शराबबंदी के विरुद्ध थे। उनकी

आपत्ति के बावजूद .भी दोनों नगरों में शराबबंदी लागू की गई। कुछ समय बाद श्री नाइट गवर्नर के सलाहकार नियुक्त हुए। किसी काम के लिए एक बार जब वे अहमदाबाद गए तो उन्होंने देखा कि शराबबंदी के कारण अहमदाबाद के मजदूर परिवारों को काफी लाभ पहुंचा है। उन्होंने इस बात को सार्वजनिक तौर पर स्वीकार भी किया।
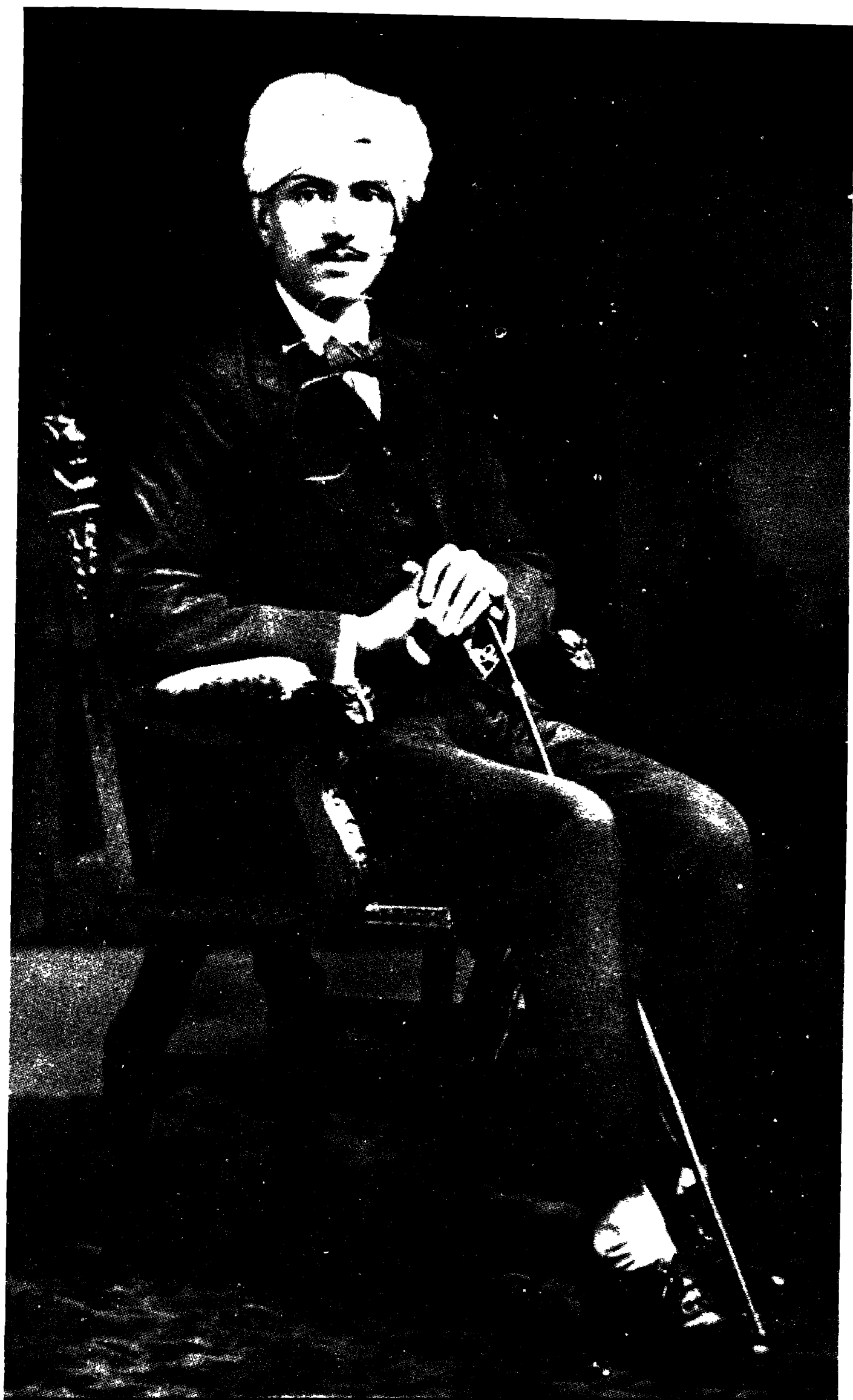
श्री मोरारजी देसाई, आई.सी.एस., 1930 में गोधरा जिले के डिप्टी कलक्टर के रूप में

श्री मोरारजी देसाई, विश्वविद्यालय के प्रशिक्षण सत्र के दौरान अधिकारी प्रशिक्षण कोर्स में महाविद्यालयी छात्र के रूप में

1947-52 के दौरान मुंबई के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बालासाहब खेर, तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं मुंबई के तत्कालीन गृहमंत्री श्री मोरारजी देसाई

1963 में तत्कालीन वित्तमंत्री श्री मोरारजी देसाई अमेरिका के राष्ट्रपति जान केनेडी के साथ

श्री मोरारजी देसाई एवं श्रीमती इंदिरा गांधी
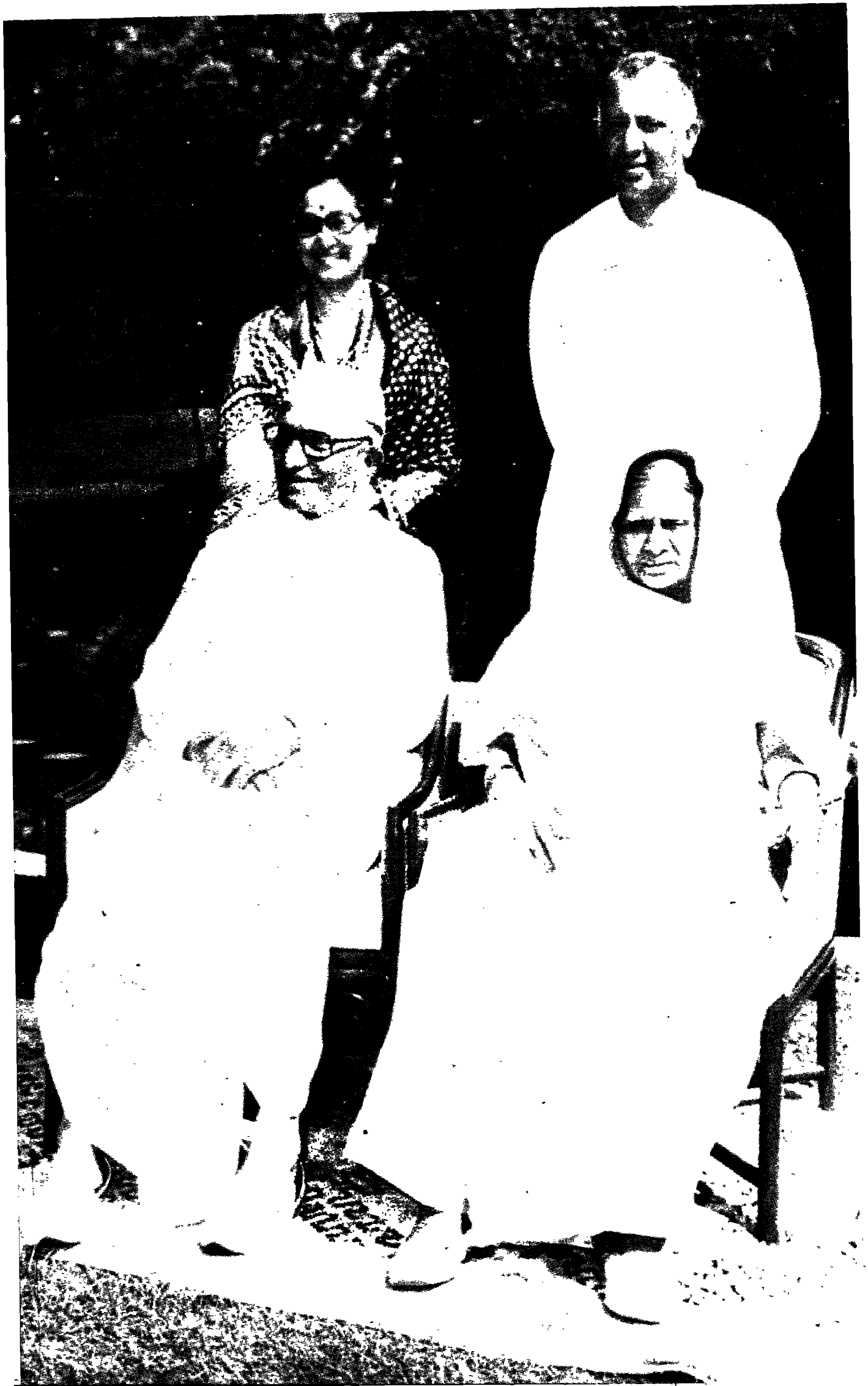
प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई अपनी पत्नी श्रीमती गजराबहन, पुत्र कांतिभाई तथा पुत्रवधु श्रीमती पद्‌मा के साथ

1964 में कामराज योजना के दौरान मंत्री पद से त्यागपत्र देने के बाद पत्नी के साथ, 7, त्यागराज मार्ग, दिल्ली में

1952-53 में श्री मोरारजी देसाई की बिना एनीस्थीसिया दिये शल्य चिकित्सा की गई

श्री मोरारजी देसाई अपने पोते भारतभाई के साथ

1977 में जनता पार्टी सरकार के दौरान प्रधानमंत्री चुने जाने के समय श्री मोरारजी देसाई श्री जयप्रकाश नारायण के साथ

श्री मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री के रूप में, दिल्ली में-प्रधानमंत्री निवास से प्रधानमंत्री कार्यालय की ओर जाते हुए

श्री मोरारजी देसाई श्री लालबहादुर शास्त्री के साथ

5

आजादी की लड़ाई में

1 सितंबर 1937 को जर्मनी ने पोलैंड पर हमला किया और दूसरा महायुद्ध आरंभ हुआ। वायसराय लार्ड लिन्लिथगो ने भारत के नेताओं, राजनीतिक पार्टियों या प्रदेश सरकारों से बिना पूछे तथा केंद्रीय या प्रादेशिक विधानसभाओं की राय लिए बिना भारत को भी युद्ध में शामिल कर दिया। कांग्रेस ने उसका विरोध किया तथा प्रदेशों की कांग्रेसी सरकारों को त्यागपत्र देने के लिए आदेश दे दिया। अतः 4 नवंबर 1939 को मुंबई मंत्रिपरिषद ने त्यागपत्र दे दिया।

मंत्री का पद छोड़ने से पहले मोरारजीभाई देसाई ने अपने कार्यालय के सारे कार्य निपटा दिए थे। सरकारी काम का एक भी पत्र बाकी नहीं बचा था। जिस दिन उन्होंने चार्ज छोड़ा उसी दिन शाम तक उन्होंने सरकारी निवास भी खाली कर दिया।

मुंबई के मंत्रिमंडल से अलग होते ही मोरारजीभाई अहमदाबाद गए और वहां जाते ही उन्होंने गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति के मंत्री का कार्य पुनः संभाल लिया।

कांग्रेस के लिए ये टेढ़े दिन थे। सत्ता से अलग हो जाने का तो कोई दुख नहीं था लेकिन दुख तो युद्ध को लेकर कैसा रवैया अपनाया जाए उसे देखने का था। इस बारे में कांग्रेसियों में भी एकमत नहीं था। कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों में भी मतभेद था।

विश्वयुद्ध के दौरान कांग्रेसी नेताओं की सहानुभूति अंग्रेजों के साथ थी। हिटलर और मुसोलिनी जैसे तानाशाही शासकों के बदले ब्रिटेन का लोकतंत्र उन्हें अधिक पसंद था। लेकिन भारत की आजादी के लिए वही कांग्रेस अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ती आ रही थी। इन परिस्थितयों में कांग्रेस को क्या करना चाहिए ? गांधी जी के साथ भी कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों में मतभेद थे।

इन सब उलझनों में से कोई हल ढूंढ़ कर जनता को सक्रिय बनाने के उद्देश्य से गांधी जी ने अक्तूबर 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया। सरकार द्वारा

लागू किए गए कानून के तहत युद्ध प्रयास का विरोध करना भी एक अपराध था। गांधी जी ने कहा कि इस प्रकार का विरोध करना भारतीय जनता का अधिकार है। तथा इस कानून को भंग करने की लड़ाई शुरू की। गांधी जी द्वारा चयन किए गए लोग सरकार को पहले से ही बता देते कि अमुक स्थान पर अमुक समय पर सार्वजनिक तौर पर युद्ध प्रयास का विरोध करेंगे। आमतौर पर सरकार ऐसे सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करती थी। जनता के अधिकार को व्यक्त करने वाला यह प्रतीकात्मक सत्याग्रह था।

अक्तूबर, 1940 के अंत में मोरारजीभाई ने अपने सत्याग्रह का नोटिस दिया। लेकिन सत्याग्रह का दिन आने से पहले ही उनको गिरफ्तार करके साबरमती जेल भेज दिया गया।

छह माह साबरमती जेल में रहने के बाद अप्रैल 1941 में उनको यरवदा जेल भेजा गया। उस समय सरदार वल्लभभाई पटेल, बाला साहब खेर, भूलाभाई देसाई आदि यरवदा जेल में ही थे। सरदार पटेल अस्वस्थ होते हुए भी सवेरे जल्दी उठकर चाय बनाते और सबको आग्रह करके पिलाते। वास्तव में तो अन्य लोगों को चाहिए था कि वे सरदार साहब की सेवा करें, लेकिन उल्टा सरदार साहब ही सबकी सेवा करते थे। और वह भी ऐसी स्वाभाविकता से कि कोई कुछ बोल भी न सके।

छह महीने के बाद बंदियों को यरवदा जेल से छोड़ा गया। अन्य जेलों से भी कैदियों को रिहा किया गया। गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह समाप्त करने की घोषणा की। मोरारजीभाई पुनः अहमदाबाद लौटे और प्रदेश समिति का काम करने लगे।

एक धर्म संकट

इस समय उनके सामने एक धर्म संकट आ गया। कांग्रेस महासमिति ने विगत में पुणे में एक प्रस्ताव पारित किया था कि यदि ब्रिटेन महायुद्ध समाप्त होने के बाद भारत को आजादी देने का आश्वासन दे और इस समय अमुक अधिकारों को हस्तांतरित कर दे तो कांग्रेस युद्ध प्रयास में सहयोग करेगी। गांधी जी इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे, फिर भी सरदार साहब, राजा जी आदि गांधी जी के अनुयायियों ने गांधी जी के विरुद्ध जाकर प्रस्ताव पारित करवाया। ब्रिटिश सरकार ने भी उस प्रस्ताव के प्रति कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की इसलिए व्यावहारिक तौर पर उस प्रस्ताव का कोई महत्व ही नहीं रह गया था, इसलिए उसे अपने-आप निरस्त ही माना जाना चाहिए था।

फिर भी सरदार साहब की इच्छा प्रस्ताव को बाकायदा निरस्त करा कर गांधी जी के विचारों का समर्थन करने वाला नया प्रस्ताव पारित करने की थी। सरदार साहब के विचारों में परिवर्तन आया था। गांधी जी भी नया प्रस्ताव आए यही चाहते

थे। किंतु कांग्रेस की कार्यकारिणी ने पुराना प्रस्ताव बहुमत से यथावत रखा।

अब सरदार साहब ने गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति में पुराने प्रस्ताव को निरस्त करने वाला नया प्रस्ताव लाने पर विचार किया। सरदार उस समिति के अध्यक्ष थे, मोरारजीभाई सचिव थे। मोरारजीभाई ने सरदार साहब से कहा, "पुणे के प्रस्ताव के बारे में मेरे विचार आज भी कायम हैं। वह प्रस्ताव हम इसलिए नहीं लाए थे कि उसके कारण ब्रिटिश सरकार हमारे अनुकूल हो। हमें वह मार्ग उचित दिखाई दे रहा था इसलिए हमने उस प्रस्ताव को पारित किया था। तभी तो मैंने उस प्रस्ताव को अपना समर्थन दिया था। मेरे विचार से वह प्रस्ताव आज भी सही है, इसलिए उसे बदलने वाले प्रस्ताव का मैं समर्थन नहीं कर सकता।"

सरदार साहब ने प्रदेश कांग्रेस समिति की बैठक बारदोली में आयोजित की। उससे पहले समिति की कार्यकारिणी की एक बैठक हुई। सदस्यों के अंदर भारी मतभेद था। लंबी चर्चा चली। किसी तरह का निर्णय लेना मुश्किल था। गांधी जी उन दिनों बारदोली में थे। सरदार सबको उनके पास ले गए। गांधी जी ने मोरारजीभाई से कहा, "आप यह ठीक नहीं कर रहे हैं, जिस सीढ़ी पर आप चढ़े हैं उसे ही फैंक देना चाहते हैं।"

मोरारजीभाई ने गांधी जी से कहा, "मैं अपने विचार बताऊं, फिर आप जो कहेंगे वही करूंगा" बापू के कहने पर उन्होंने अपने विचार बताते हुए कहा, "आपने अहिंसा और सत्य के बारे में हमें जो समझाया है, मैं उसे पूरी तरह से मानता हूं, फिर भी मैंने अभी इतनी ताकत नहीं पाई है कि इन दोनों साधनों का पूरा और सही उपयोग करने का दावा कर सकूं। अहिंसा और सत्य के पूरे पालन के बिना, अगर स्वराज मिलता भी है, तो भी मुझे वह नहीं चाहिए। ऐसा आप की तरह कहने की ताकत मुझ में नहीं है। इसलिए उस मर्यादा को समझते हुए पुणे प्रस्ताव को मैं अपने लिए उचित समझता हूं। अब आप मुझे सलाह दीजिए कि अपना मत मैं किस पक्ष में दूं ?"

गांधी जी ने तुरंत कहा, "आपके विचार के अनुसार आपने जिस तरह अपना मत देना सोचा है, ठीक ही है।"

उसके बाद पुनः कार्यकारिणी की बैठक हुई। फिर चर्चा हुई। आखिर में सरदार साहब ने सदस्यों का अभिप्राय जानना चाहा। चार पक्ष में और तीन विपक्ष में थे। चार सदस्य चर्चा को स्थगित किए जाने के पक्ष में थे। प्रस्ताव पारित हुआ।

समिति की पूर्ण बैठक में सरदार साहब ने गांधी जी से पुराने प्रस्ताव को बदलने की बात समझाने के लिए कहा। लेकिन गांधी जी ने उससे पहले ही सदस्यों का मत जानना चाहा। 28 सदस्य गांधी जी और सरदार साहब के साथ थे और 54 सदस्य मोरारजी के विचार के साथ थे, जब कि 28 सदस्य तटस्थ थे। इसे देखकर गांधी जी ने कहा कि अब प्रस्ताव बदलने के लिए चर्चा करने की

आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार पुणे प्रस्ताव कायम रहा।

बयालिस की लड़ाई का विरोध

जब जापानियों ने पूर्वोत्तर एशिया के ब्रिटिश संस्थानों पर आक्रमण किया तब अंग्रेज वहां की जनता को उसके भाग्य पर छोड़कर अपनी जान बचाने के लिए भाग खड़े हुए। इतना ही नहीं, उन देशों में जो कुछ राष्ट्रीय संपत्ति थी उन्होंने उसे भी नष्ट कर दिया ताकि दुश्मन उसका प्रयोग न कर सके। आखिर में बर्मा (मनमार) से भी वे उसी तरह भागे। उस समय ब्रिटिश सरकार भारत में भी उसी नीति को अपनाने के लिए तैयार थी। कुछ इलाका खाली करने की तैयारी भी वे कर चुके थे। उसके कारण जनता में भारी चिंता और सख्त विरोध की भावना पनपी। गांधी जी को भी लगने लगा था कि अंग्रेज अगर ऐसा करना जारी रखेंगे तो भारत के लोग शायद जापान का स्वागत करेंगे, और 'ईधर कुआं, उधर खाई' जैसा हाल होगा। भारत आजाद होगा तभी जनता में अपनी आजादी की रक्षा करने के लिए जापान के विरुद्ध लड़ने का उत्साह जागेगा। इसलिए भारत को तुरंत आजादी मिलनी चाहिए और अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना चाहिए। गांधी जी की धारणा थी कि अगर अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाते हैं तो संभव है कि जापान भारत के ऊपर आक्रमण न भी करे। उनकी स्पर्धा और दुश्मनी अंग्रेजों के साथ है, भारत के साथ नहीं। इसलिए अप्रैल 1942 में उन्होंने अंग्रेज शासकों से भारत छोड़ने का अनुरोध किया। तथा उनके ऐसा न करने की स्थिति में देशव्यापी अहिंसक आंदोलन शुरू करने की चेतावनी दी। अपने लेखों और भाषणों में उन्होंने भारत छोड़ो (क्विट इंडिया) का नारा शुरू किया जिसे सतत जारी रखा और जनता को अंतिम लड़ाई के लिए तैयार रहने का आदेश दिया।

'भारत छोड़ो' आंदोलन की जो रूपरेखा गांधी जी ने बनाई थी उसमें यह भी कहा था कि आंदोलन में हिस्सा लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति यही समझ कर चले कि वह आजाद है।

सरदार साहब गांधी जी की इस बात से सहमत थे लेकिन मोरारजीभाई को इस आंदोलन को लेकर आशंका थी। उन्होंने देखा कि कांग्रेस का समाजवादी गुट इस आंदोलन के बारे में अति उत्साही था, लेकिन उस गुट के सदस्यों में अहिंसा के लिए कोई श्रद्धा नहीं थी। वे गुप्त तरीके से तोड़-फोड़ की गतिविधि जारी रखना चाहते थे। जिसके लिए वे तैयारी भी कर रहे थे।

मोरारजीभाई को इस बात की भी आशंका थी कि गांधी जी के अहिंसा और सत्य के सिद्धांतों की बलि दे दी जाएगी तथा हिंसा लोकप्रिय हो जाएगी।

मोरारजीभाई की इस आशंका के कारण सरदार साहब और उनके बीच मतभेद पैदा हुआ। सरदार साहब को शायद आशंका होगी कि मोरारजीभाई

आंदोलन में शामिल नहीं होंगे, इसलिए सरदार साहब ने उनको गांधी जी के साथ इस बात को लेकर विचार-विमर्श कर लेने की सलाह दी। उन दिनों गांधी जी बंबई आए थे। इसलिए मोरारजीभाई वहां जाकर उनसे मिले।

गांधी जी ने मोरारजीभाई से पूछा, ''आप 'भारत छोड़ो' आंदोलन के बारे में क्या समझते हैं ?'' प्रत्युत्तर में मोरारजीभाई ने बताया, ''इस आंदोलन के दौरान देश भर के मजदूर हड़ताल पर चले जाएं तथा किसान लोग 'ना-कर' के कार्यक्रम के अनुसार राजस्व अदा करने से इंकार कर दें, इसे मैं नहीं मान सकता। आपके द्वारा संस्थापित अहमदाबाद का 'मजदूर महाजन' एक मजबूत संगठन माना जाता है, फिर भी वह लंबे अरसे तक लड़ाई जारी नहीं रख सकेगा। अधिक से अधिक तीन महीनों तक चल सकता है, दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार के लिए यह जीने-मरने का प्रश्न है, वह अब की बार जरा-सी भी ढील नहीं देगी।

''इस आंदोलन से हम अपने आदर्श की रक्षा नहीं कर सकेंगे। जो लोग आप के आंदोलन के लिए सर्वाधिक उत्साहित दिखाई दे रहे हैं, उनमें से अधिकांश लोगों को अहिंसा पर जरा-सा भी विश्वास नहीं है, वे लोग गुप्त तरीके से हिंसा का आचरण किए बिना रह नहीं सकेंगे। इस तरह का अगर सामुदायिक आंदोलन शुरू होता है तब हिंसा का साधन लोकमान्य बन जाएगा और आपकी बीस-पचीस वर्षों की मेहनत विफल हो जाएगी। गुप्त तरीके से की गई तोड़-फोड़ के द्वारा सत्य की सुरक्षा कभी नहीं हो पाएगी। आपके आंदोलन में असत्य का कोई स्थान नहीं है, इसलिए उसमें गुप्त या भूमिगत हिंसक आंदोलन के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।

गांधी जी ने मोरारजीभाई की बात शांति से सुनी। फिर कहा, ''आप की बात बिल्कुल सही है। लेकिन हालात दम घोंटनेवाले हैं, ऐसे में अगर हम निष्क्रिय रहकर अपनी जिम्मेदारी को पूरा न करें तो जनता में हताशा फैल जाएगी। अगर आपको ऐसा कुछ लगता है, तो क्या हमें कुछ कदम उठाने की आवश्यकता नहीं दिखती ?''

''कुछ कदम तो जरूर उठाने चाहिए।''

''तो इसके अलावा और कौन-सा कदम उठाना चाहिए ?''

''अगर मैं कोई कदम उठाने का सुझाव दे सकता तो जरूर देता। लेकिन वह मेरे बस की बात नहीं है, वह ताकत तो आप ही रखते हैं, इसलिए आपको ही इस बारे में सोचना होगा। तथा आपको जो उचित लगे, निर्णय ले लेना चाहिए।''

मोरारजीभाई ने एक और बात स्पष्ट कर दी। उन्होंने कहा, ''मेरी बात से अगर आप यह समझते हैं, कि मैं आंदोलन में हिस्सा नहीं लूंगा, तो वह मेरे प्रति गलत धारणा होगी। मैं यह बताना चाहूंगा कि आप जो भी निर्णय करेंगे, उसमें

मैं पूरे उत्साह के साथ शामिल होऊंगा।''

गांधी जी ने मोरारजीभाई से कहा, ''आप मेरे साथ सेवाग्राम चलिए। वहां अन्य साथियों के साथ इस विषय पर चर्चा करेंगे।''

मोरारजीभाई ने कहा, ''मुझे जो भी कहना था, आपसे कह ही दिया है। मुझे लगता है कि मैं उसमें और कुछ नहीं जोड़ सकूंगा। इसलिए सेवाग्राम जाने का कोई मतलब नहीं है। आप जो चाहें निर्णय कर लीजिए। वह मेरे लिए शिरोधार्य होगा।''

आंदोलन के बारे में आखिरी निर्णय लेने वाली महासमिति की बैठक मुंबई में आठ अगस्त को रात आठ बजे संपन्न हुई। आंदोलन शुरू होने से पहले ही नौ अगस्त की भोर में ही सरकार ने नेताओं को गिरफ्तार कर लिया, उनमें मोरारजीभाई भी थे। उनको यरवदा जेल भेजा गया।

तीन वर्ष का कारावास

मुंबई से जिस ट्रेन से गांधी जी और उनके साथियों को ले जाया जा रहा था उसमें उनके साथ कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य, मोरारजीभाई देसाई तथा मुंबई के अन्य नेता लोग एवं कुछ समाजवादी भी थे। गांधी जी और उनके साथियों को आगाखान महल में ले जाया गया। मुंबई के नेताओं को यरवदा जेल भेजा गया तथा कार्यकारिणी के सदस्यों को ट्रेन द्वारा अहमदनगर ले जाकर वहां अहमदनगर के किले में रखा गया।

तीनों समूहों को ट्रेन में अलग अलग रखा गया था। मोरारजीभाई के साथ मेहरअली और अन्य समाजवादी नेता थे। उन्होंने मोरारजीभाई से कहा, ''सौ दिनों में यह युद्ध समाप्त हो जाएगा और अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ेगा।'' मोरारजीभाई को परिस्थिति कुछ और ही दिखाई देती थी। उन्होंने कहा, ''एक सौ के पीछे एक शून्य जोड़कर कहें कि हम 1000 दिन में रिहा होंगे तो वह हिसाब अधिक सही होगा।''

कारावास के दौरान कुछ दिनों तक तो तोड़-फोड़ की खबरें मिलती रहीं, जिससे समाजवादियों का उत्साह बढ़ता जा रहा था। लेकिन तीन महीनों के भीतर मामला शांत हो गया। समाजवादी लोग हतोत्साहित हो गए। उन्होंने सिर पीट लिया और कहा कि हम 50 वर्ष पीछे पड़ गए। लेकिन मोरारजीभाई को ऐसा नहीं लग रहा था। उनकी धारणा के अनुसार, ''यदि लोगों ने सत्याग्रह का मार्ग ही स्वीकारा होता तो अंग्रेजों को भारत के लोगों की बात माननी पड़ती, लेकिन हिंसा हुई इसलिए शासन को जवाबी हिंसा करने का बहाना मिल गया। लेकिन हम कभी पिछड़े नहीं हैं। अब अंग्रेजों की आंखें खुलेंगी और वे लोग समझ पाएंगे कि अब वे यहां शासन नहीं कर पाएंगे।'' मोरारजीभाई मानते थे कि 'अब हम आजादी पा सकेंगे।' आंदोलन के दौरान हिंसा की कुछ घटनाओं को वाहवाही मिली जिस

के कारण आंदोलन में और हिंसा फैली।

कारावास के दौरान मोरारजीभाई ने कुरान का अध्ययन किया। उसे पढ़ने के बाद उनमें इस्लाम के प्रति आदर भाव बढ़ा। मोरारजीभाई को इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि पैगंबर साहब हिंसा में विश्वास नहीं रखते थे, उन्हें अहिंसा में विश्वास था। अपने बचाव के लिए उनको लड़ना भी पड़ा फिर भी उन्होंने अपने हाथ में तलवार कभी नहीं ली। वे अपना जीवन सादगी से जीते थे और दूसरों के सामने उदाहरणस्वरूप जीवन रखते थे। कारावास के दौरान मोरारजीभाई ने उर्दू का अध्ययन भी किया।

उनके कारावास के दौरान एक जानने योग्य घटना घटी। मोरारजीभाई के मित्र मंगलदास पकवासा नासिक जेल में गंभीर रूप से बीमार हो गए। उनको इस कैद से निकाल कर मुंबई के हरकिसन दास अस्पताल में भर्ती कराया गया। डाक्टरों का मानना था कि अब वे नहीं बचेंगे। पकवासा ने मोरारजीभाई से मिलने की इच्छा जताई इसलिए इंस्पेक्टर जनरल आफ प्रिजन्स (आई.जी.पी.) ने मोरारजीभाई से कहा कि आप पेरोल पर रिहा होकर उनसे मिल लें।

पेरोल पर रिहा होने के लिए कैदी को कुछ बंधन स्वीकार करने पड़ते थे जैसे, ''मैं रिहा होने के बाद जहां जाऊंगा वहां राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लूंगा, मैं निश्चित समय पर अपने आप जेल में वापस आऊंगा'' आदि। इस तरह के बंधन मोरारजीभाई को अपने स्वाभिमान के लिए अच्छे नहीं लगते थे। आई.जी.पी. ने बीच का एक रास्ता सुझाया, ''आपसे हम कोई लिखित बंधन लेना नहीं चाहेंगे। तीन दिन के लिए आप जा सकते हैं आप वापिस लौट ही आएंगे, मुझे आप पर पूरा विश्वास है।''

आई.जी.पी. उनको अपनी कार में ही पुणे स्टेशन तक छोड़ आए। ट्रेन द्वारा वे मुंबई पहुंचे और स्टेशन से सीधा अस्पताल पहुंचे। दोनों मित्र प्रेम से गले लगे। उससे पहले श्री पकवासा में जीने की इच्छा ही नहीं रही थी। मोरारजीभाई से मिलने से, उनसे बातचीत करने से जैसे उनमें जीने का उत्साह जागा। पहले वे दवाई लेने से आनाकानी कर रहे थे, अब वे नियमित दवाई लेने लगे।

मरीज की हालत में सुधार होने लगा। डाक्टर ने कहा कि अभी तो वे बच जाएंगे, लेकिन छह महीने से अधिक जिंदा नहीं रह सकेंगे। हुआ यह कि श्री पकवासा उसके बाद पच्चीस साल तक जीवित रहे। जब कि, डाक्टर का, जो उनसे छोटी उम्र के थे, छह महीने में स्वर्गवास हो गया।

मोरारजीभाई निर्धारित समय पर जेल में वापस लौट आए। कैदखाने के रजिस्टर में उनकी अनुपस्थिति ही दर्ज नहीं की गई थी।

6
मुंबई के गृहमंत्री

1942 में हुई गिरफ्तारी करीब तीन वर्ष तक जारी रही। 1945 में द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ तथा ब्रिटिश सरकार ने भारत के नेताओं के साथ विचार-विमर्श करने का सोचा। वायसराय वेवल ने राजनीतिक बंदियों को रिहा करने के आदेश दिए तथा शिमला में नेताओं की बैठक बुलाई। वह बैठक तो कोई विशेष सफल नहीं रही, लेकिन उसके बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा भेजे गए केबिनेट मिशन के साथ हुए विचार-विमर्श का कुछ अच्छा परिणाम निकला। केंद्रीय और प्रांतीय विधानसभाओं के चुनाव कराए गए।

मुंबई राज्य में पुनः बाला साहब खेर की मंत्रिपरिषद का गठन हुआ। उस समय मोरारजीभाई को गृह मंत्रालय सौंपा गया। उनको मंत्रिमंडल में मुख्यमंत्री के बाद दूसरे नंबर का दर्जा दिया गया। आधिकारिक तौर पर मोरारजीभाई को उप-मुख्यमंत्री का स्थान नहीं दिया गया था, फिर भी व्यावहारिक तौर पर उन्हें उप-मुख्यमंत्री ही समझा जाता था। गृहमंत्री के रूप में बिताए उनके पांच वर्ष उनके राजनीतिक जीवन के श्रेष्ठ वर्ष थे।

मुख्यमंत्री श्री बाला साहब खेर और उनके डिप्टी मोरारजीभाई देसाई के बीच एक विशिष्ट तरह का संबंध विकसित हुआ। दोनों के बीच में ऐसी समझ पनपी, कि जब कभी जनता की नाराजगी मोल लेनी हो तब वह जिम्मेवारी मोरारजीभाई ले लेंगे तथा मुख्यमंत्री को ऐसी मुसीबत से दूर रखा जाएगा। दोनों के बीच विचारों में इतनी अधिक एकता थी कि उनके बीच शायद ही कभी मतभेद हुआ हो। बिना चर्चा के ही वे दोनों एक-दूसरे के विचारों को समझ जाते थे। उन दोनों के बीच संपूर्ण विश्वास और अटूट मैत्री का संब्रंध स्थापित हुआ था।

मोरारजीभाई स्वच्छ और स्वस्थ प्रणालियां कायम करने के प्रति विशेष सावधानी रखते। एक बार प्रदेश के पब्लिक सर्विस कमिशन के अध्यक्ष के समक्ष दो उम्मीदवारों के बीच चयन करने में उलझन भरी स्थिति पैदा हुई। उन्होंने

मोरारजीभाई से सलाह मांगी। मोरारजीभाई ने कहा, "आपको ही यह चयन करना चाहिए। मैं उसमें सलाह नहीं दे सकता। एक बार मैं मांगने पर सलाह दे दूंगा तो दूसरी बार बिना मांगे भी सलाह देने की इच्छा होगी। इसलिए मुझे इस मसले से दूर रहना चाहिए तथा कमीशन को ही अपना स्वतंत्र निर्णय लेने देना चाहिए।"

मुख्यमंत्री बाला साहब खेर, गृहमंत्री मोरारजीभाई देसाई और अन्य मंत्रियों में आंतरिक रिश्ता अच्छा था तथा कांग्रेस दल के बहुमत में होने के कारण नए कार्य अत्यंत आसानी से हो रहे थे। 1937 की मंत्रिपरिषद को दो वर्ष में ही त्यागपत्र देना पड़ा था इसलिए उसे अपने कार्यक्रम को लागू करने का पूरा अवसर ही नहीं मिला था। अब की बार 1946 से पूरे पांच वर्ष का समय मिला, जिससे कई आर्थिक, सामाजिक सुधार के कार्य किये जा सके। इन वर्षों में मुंबई राज्य में लड़ाई-झगड़े नहीं थे, इसलिए मंत्रीगण अपने अपने विभागों के कार्य बिना अड़चन कर सकते थे।

इन पांच वर्षों के दौरान 1937 के कुछ कानूनों को संशोधित करके अधिक प्रभावशाली बनाया गया। किसानों और भूमि-सुधार से संबंधित कुछ नए कानून भी बनाए गए।

सामाजिक सुधार के अंतर्गत एक पत्नीत्व का कानून और लग्नविच्छेद (तलाक) का कानून क्रांतिकारी कानून थे। शुरू में उसका विरोध भी बहुत हुआ, लेकिन समाज में महिलाओं का स्वाभिमान बनाए रखने के लिए ये कानून आवश्यक भी थे। मुंबई सरकार ने उसकी शुरुआत की। केंद्रीय सरकार ने उसके लगभग दस वर्ष बाद इस तरह के कानून पूरे देश के लिए बनाए।

इन कानूनों का प्रारूप तैयार होने के दौरान एक बार राजा जी मुंबई आए थे। एक पत्नीत्व के कानून के बारे में उन्होंने मोरारजीभाई से कहा, "यदि कोई पुरुष दो पत्नियों को रखने में सक्षम हो, या उसका भरण पोषण कर सकता हो तो, उसे दो पत्नियां रखने की छूट मिलनी चाहिए।" मोरारजीभाई ने राजाजी से पूछा, "अगर ऐसा प्रावधान किया जाता है तो, फिर ऐसी स्त्रियों को भी दो पतियों को रखने की छूट दी जानी चाहिए जो, दो पतियों को रखने में सक्षम हों।" लेकिन यह तो आपसी बहस थी। स्त्री-पुरुष के बीच में रिश्ता समान होना चाहिए, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। मोरारजीभाई इस तरह के संबंध के पक्षधर थे।

क्रिमिनल ट्राइब्ज एक्ट नामक एक पुराने कानून के अनुसार अमुक जातियों को जन्म से ही अपराधी समझकर उनकी गतिविधियों पर स्थायी रूप से प्रतिबंध लगाए गए थे। उस अन्यायपूर्ण कानून को देश में सर्वप्रथम मुंबई सरकार ने निरस्त किया।

कारावास के दौरान कैदियों के साथ जेल में कैसा पाशविक व्यवहार किया जाता है, उसका अनुभव मोरारजीभाई को था। गृहमंत्री बनने के बाद उन्होंने जेल

सुधार का कार्य भी अपने हाथ में ले लिया। मंगलदास पकवासा की अध्यक्षता में जेल सुधार समिति का गठन किया गया। उस समिति की सिफारिशें शीघ्र ही मिल गईं और उस पर तुरंत अमल भी किया गया। कैदियों के लिए धूम्रपान पर प्रतिबंध था, उसे उठा लिया गया। कैदी अपने पैसे से बीड़ी खरीद कर पी सकें, ऐसा प्रावधान किया गया। यह नियम भी बनाया गया कि यदि कोई कैदी जेल में मिलने वाले खाने के अतिरिक्त कुछ और खाना चाहता है और उसे वह अपने पैसों से खरीद सकता है, तो खरीद ले। कैदियों से जो काम कराया जाता था उसकी मजदूरी का एक चौथाई हिस्सा उसके खाते में जमा कराने का निर्णय भी लिया गया, कैदी जब चाहे स्वयं अपने लिए उस धन का उपयोग कर सके, इसकी भी अनुमति दी गई। इससे एक लाभ यह हुआ कि कैदी जेल में कम अपराध करने लगा।

कैदियों को जेल से बाहर भी काम पर जाने की छूट दी जाने लगी। दो वर्षों से अधिक समय की सजा पानेवाले कैदियों को प्रति दो वर्षों में पंद्रह दिन के लिए पेरोल पर रिहा करके घर पर जाने देने का नियम बनाया गया। कैदियों के लिए खेल कूद के साधनों का प्रबंध किया गया। त्यौहारों के दिन कैदियों को अच्छा खाना दिए जाने का प्रबंध भी किया गया।

जेल सुधार का उद्देश्य यह था कि कैदी कारावास के दौरान कुछ सोचें-समझें, अपने आपको सुधारें तथा रिहा होने के बाद जेल से बाहर जाकर कुछ समाजोपयोगी कार्य करें और अच्छा जीवन जिएं। इसके लिए जेल के कर्मचारियों को आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाने लगा।

सांप्रदायिक दंगे

सितंबर, 1946 में जब केंद्र में अंतरिम सरकार का गठन हुआ तब मुस्लिम लीग अपनी कठिन शर्तों के कारण उसमें शरीक नहीं हो सकी थी। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में बनाई गई इस अंतरिम सरकार के विरुद्ध लोकमत बनाने के लिए मुस्लिम लीग ने देश भर में सीधे कदम उठाने का आदेश जारी किया, परिणामस्वरूप समग्र देश में सांप्रदायिक दंगे फूट पड़े। अहमदाबाद में तो जुलाई से ही दंगे शुरू हो गए थे। पहली बार जब दंगा हुआ तो गांधी जी ने मोरारजीभाई से कहा, "आपको अहमदाबाद जाकर आपस में लड़ रहे दोनों पक्षों से मिलना चाहिए। पुलिस और सेना की सहायता नहीं लेनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर आत्मबलिदान देकर भी इस सांप्रदायिक दंगे की आग को बुझाना चाहिए। यही एकमात्र उपाय मुझे अच्छा लग रहा है।"

बातचीत के आखिर में गांधी जी ने कहा, "यह सब जो मैंने आपसे कहा है, वह इसलिए कि वही मुझे ठीक लगा, आखिर तो आपको जो उचित लगे वही करना है।"

मोरारजीभाई ने गांधी जी को कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। उन्हें गांधी जी की सलाह तात्विक दृष्टि से सही लग रही थी, लेकिन अपनी और दूसरों की मर्यादाओं को समझते हुए व्यावहारिक नहीं लग रही थी, फिर भी वे पहली उड़ान से अहमदाबाद पहुंच गए।

रास्ते में उन्होंने गांधी जी की सलाह पर पुनः विचार किया। उन्होंने अनुभव किया कि जुनून के कारण लड़ रहे दोनों गुटों के बीच जाकर जान दे देने में कोई विशेष लाभ नहीं होगा। आपस में लड़ रही दोनों अमानुषी, पाशविक ताकतें अपने बीच आने वाले को जान से ही मार देंगी। गृहमंत्री के ऐसे बलिदान से जनता में शासन के प्रति आदर नहीं रहेगा, परिणामस्वरूप दंगे रुकने की बजाय और भड़क कर फैल सकते हैं।

मन ही मन सोचने पर मोरारजीभाई को लगा कि हमें मौत का डर नहीं है, लेकिन इस तरह से जीवन का बलिदान देने में कोई विशेष आनंद या उत्साह नहीं दिखाई देता था। उनके विचार से यदि बलिदान की भावना आनंदमय नहीं है, तथा बलिदान अगर जबरन किया गया कर्तव्यपालन भर ही होगा, तो उसमें लोगों के मन को प्रभावित करने वाली कोई शक्ति नहीं होगी। इसलिए अहमदाबाद जाकर उन्होंने कार्यकर्ताओं एवं अधिकारियों को साथ लेकर दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा किया। उन क्षेत्रों में उन्होंने पांच-छह घंटे घूमकर लोगों की मुश्किलें सुनीं, लोगों को समझाया। बड़ी संख्या में हिंदू और मुसलमान लोग मोरारजीभाई से मिले और उनके साथ विचार-विमर्श में भाग लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि नगर के लोगों में भय और आतंक का साया कम हुआ तथा उस दिन हिंसा की एक भी घटना नहीं घटी। वापस लौटने पर मोरारजीभाई ने गांधी जी को अपने दौरे का पूरा ब्यौरा दिया। गांधी जी ने जवाब में कहा कि आप यथासंभव जो कर सकते थे किया, इस बात का मुझे संतोष है।

धीरे धीरे अहमदाबाद में दंगों का उपद्रव कम हुआ, लेकिन छिटपुट हमले होते रहते थे। सरदार साहब को इस बात की भारी चिंता थी, कांग्रेसी लोग समझते थे कि दंगों को रोकने के लिए मोरारजीभाई दंगा कर रहे मुसलमानों के विरुद्ध आवश्यक कठोर कदम नहीं उठा रहे हैं। इस बात को लेकर कुछ हिंदुओं ने तो मोरारजीभाई का पुतला भी जलाया, लेकिन वास्तविकता यह थी कि मोरारजीभाई दोनों गुटों के दंगाइयों के विरुद्ध समानरूप से कठोर कदम उठाते थे।

मोरारजीभाई ने सरदार साहब को अपना नजरिया समझाया। उन्होंने कहा कि दोनों गुटों के तूफानी बनने के समय दोनों के विरुद्ध सख्ती से पेश आना आवश्यक है। उस समय हमले की शुरुआत किसने की ? इसका पता लगाकर कदम उठाना संभव नहीं है। किसी को भी कानून हाथ में लेने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

कांग्रेसियों से उन्होंने कहा कि मुझे जो ठीक लग रहा है, उसी रास्ते का चयन मैं कर सकता हूं। अगर आप मानते हैं कि मैं कमजोर गृहमंत्री हूं तो मैं अपना त्यागपत्र देने को तैयार हूं। लेकिन अगर आप चाहते हैं कि मैं इस स्थान पर बना रहूं तो आप लोगों को मेरे पर विश्वास रखना होगा तथा मेरे काम में सहयोग देना होगा।

कुछ हिंदू लोग गुंडों को पैसा देकर बदला लेने का तरीका अपनाते थे। ऐसे लोगों में कुछ मोरारजीभाई के साथी भी थे। मोरारजीभाई ने उन लोगों से कहा कि यह तरीका गलत है। उन्होंने उनको समझाया कि कहीं एक स्थान पर एक मुस्लिम एक हिंदू को मारे और उसका प्रतिशोध लेने के लिए किसी अन्य जगह पर कोई हिंदू किसी भी मुसलमान को मार डाले यह कभी नहीं हो सकता। उन्होंने उन लोगों को चेतावनी देते हुए कहा कि अगर आप लोग अपने इस तरीके को बंद करने का आश्वासन नहीं देंगे तो मुझे आप लोगों को गिरफ्तार करके जेल भेजना पड़ेगा। उन लोगों के आश्वासन देने पर एकाध सप्ताह में छिटपुट दंगे भी बंद हो गए।

मुंबई में भी दंगे हुए थे। वहां भी कठोर कदम उठाकर शांति स्थापित की गई। एक पुलिस कमिश्नर शांति बनाए रखने की कार्यवाही दिल लगाकर नहीं कर रहा था, इसलिए मोरारजीभाई ने उन्हें मुअत्तिल कर दिया, तथा उनके कनिष्ठ अंग्रेज अधिकारी को उनके स्थान पर नियुक्त कर दिया। नियुक्ति के समय, उस नए कमिश्नर को भी आगाह किया कि अगर वह भी एक सप्ताह में शांति स्थापित नहीं कर सके, तो उनका जाना भी निश्चत है। कमिश्नर ने निर्धारित समयावधि में शांति स्थापित कर दी।

सांप्रदायिक दंगों ने ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया कि उनसे निपटने के लिए मोरारजीभाई को कुछ सख्त व कड़े कदम उठाने पड़े। उन दिनों फांसी की सजा निरस्त करने के लिए विचार-विमर्श चल रहा था। उसके लिए विधेयक का प्रारूप तैयार किया जा रहा था जिसे विधानसभा में पेश किया जा सके। दंगों को देखते हुए उस सजा को निरस्त करने संबंधी कार्यवाही पर रोक लगाई गई। आवश्यकता पड़ने पर दंगाइयों को कोड़े मारने की सजा का प्रावधान भी किया गया। जिन क्षेत्रों में दंगे के कारण किसी व्यक्ति पर हमला होता है तो उन क्षेत्रों पर सामूहिक जुर्माना लगाने का प्रावधान भी किया गया। ऐसे कदमों से तो अधिकांश निर्दोष लोगों को ही जुर्माने का भागीदार बनना पड़ता है इसलिए इस कदम को अन्यायी बताया गया और इसका बड़े पैमाने पर विरोध होने लगा। लेकिन मोरारजीभाई का मत था कि अपने क्षेत्र में दंगे न हों यह देखने का कर्तव्य सभी नागरिकों का है। सामूहिक जुर्माने की घोषणा भर से ही कई क्षेत्र जागृत हो गए और अपने क्षेत्रों में कहीं कोई दंगा न हो, उसका ध्यान रखने लगे।

इस मंत्रिपरिषद की कार्यावधि के दौरान देश को आजादी तो मिली लेकिन बंटवारा भी हुआ। दोनों ओर से आमने-सामने दंगे-फसाद होने लगे, लेकिन मुंबई में सरकार द्वारा जो कदम उठाए जा रहे थे, उसके कारण मुंबई में शांति रही।

उस समय पंजाब के दो-तीन हिंदू नेताओं ने मोरारजीभाई से भेंट करके कहा कि बंगाल और पंजाब में मुसलमान हिंदुओं पर जो अत्याचार कर रहे हैं, उसका बदला आपको मुंबई के मुसलमानों से लेना चाहिए। उन नेताओं ने यह भी कहा कि ऐसा कुछ करना चाहिए जिससे मुंबई के मुसलमान भागकर पाकिस्तान चले जाएं। उनकी ऐसी बातों से मोरारजीभाई बहुत नाराज हुए। वे मानते थे कि सही भारतीय संस्कृति वही है, जिसमें भारत भर में कहीं भी, किसी भी संप्रदाय अथवा धर्म के लोग निर्भयतापूर्वक रह सकें और आपस में भाईचारे की भावना बनी रहे। अगर इस स्थिति में बदलाव आता है, तो भारतवर्ष का ही ह्रास हो जाएगा। मोरारजीभाई का प्रयत्न ऐसा वातावरण निर्मित करने का था कि मुंबई राज्य से एक भी मुसलमान घबराकर पलायन न करे। मोरारजीभाई ने सलाह देने वाले उन सज्जनों से कहा कि वे ऐसी बात फिर न करें। अगर करेंगे तो जेल भेज दिए जाएंगे।

दंगों के दौरान हथियारों को साथ लेकर चलने पर प्रतिबंध लगाया गया था। खुलेआम तलवार या भाले लेकर कोई घूम नहीं सकता था। सिख लोग अपने साथ किरपाण को रखना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते हैं, इसलिए उनको छोटी किरपाण रखने की अनुमति देने में कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन मुंबई के सिखों ने तलवार साथ लेकर घूमने का आग्रह रखा। मोरारजीभाई देसाई ने अशांति के समय में इस तरह की अनुमति देने से इंकार कर दिया। उनका कहना था कि अगर सिखों को इस तरह तलवार साथ लेकर घूमने की अनुमति दी जाती है तो दूसरों को ऐसा करते हुए कैसे रोका जा सकेगा ? इसलिए चाहे आप कितना ही विरोध क्यों न करें, मैं आपको तलवार साथ लेकर चलने की अनुमति नहीं दे सकता। परिस्थिति शांत होने के बाद आपकी बात मानी जा सकेगी।

सांप्रदायिक दंगे और अन्य हिंसक वारदातों को निपटाने के लिए मोरारजीभाई ने होमगार्ड्ज का गठन किया। उस संस्था का गठन पुलिस की सहायता के लिए किया गया था। होमगार्ड्ज से जो अपेक्षाएं रखी गई थीं उसे उन्होंने पूरा किया था। बाद में उसमें स्त्रियों का विभाग भी शुरू किया गया। महिला एकांश ने भी काफी अच्छा कार्य किया। होमगार्ड्ज के जवानों को बस चलाने का, अग्निशमन आदि का प्रशिक्षण भी दिया जाता था, जिससे वे लोग हड़ताल जैसे समय में भी जनता की सेवा कर सकें और अत्यावश्यक सेवाओं को जारी रखा जा सके।

कई उपयोगी कदम

पहली बार बने खेर मंत्रिमंडल ने समाज और प्रशासन में रिश्वतखोरी रोकने के कुछ

कदम उठाए थे। 1946 में उस अभियान को और आगे बढ़ाया गया। पुलिस विभाग में रिश्वत विरोधी एकांश का गठन किया गया। प्रत्येक जिले में उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक "एन्टी करप्शन कमेटी" का गठन किया गया।

मोरारजीभाई अपनी कार के ऊपर राष्ट्रीय ध्वज नहीं लगाते थे। कभी कभी तो बिल्कुल अनजानी कार से यात्रा करते थे, जिसके कारण पुलिस विभाग कितना सजग है, यह जान सकते थे।

ट्राम और बस में चढ़ने के लिए जनता को धक्के-मुक्की का सामना करना पड़ता था, जिससे बहुत परेशानी होती थी। मोरारजीभाई देसाई ने पंक्ति बनाने की प्रथा शुरू की। जनता में 'क्यू' की आदत डलवाने के लिए भीड़-भीड़ वाले मुख्य रेलवे स्टेशनों या बस स्टैंड पर दो दो पुलिस के जवान तैनात किए जाते थे। पुलिस के जवान जनता को 'क्यू' में खड़ा रहने के लिए समझाते, न मानने वालों को पंक्ति में सबसे पीछे खड़ा करते। धीरे धीरे लोग पंक्ति में खड़ा रहने के लाभ जानने लगे और उनमें पंक्ति में लगने की आदत आ गई। फिर तो हर जगह, हर मौके पर लोग भीड़-भड़क्का छोड़कर पंक्ति लगाकर शांति से रहने लगे। इस तरह का अनुशासन भारत भर में सबसे अधिक मुंबई में देखा जा सकता है।

देश के कई बड़े बड़े शहरों में आदमी द्वारा खींची जानेवाली रिक्शा थीं, मुंबई राज्य में ऐसी रिक्शा नहीं थीं लेकिन यहां के कई नगरों में साइकिल रिक्शा चल रही थीं। मोरारजीभाई ने देखा कि ऐसी रिक्शा चलाने वालों को काफी परिश्रम करना पड़ता है। यह व्यवस्था मानवता विरोधी है। अतः उन्होंने साइकिल रिक्शा बंद करवाई और उसके स्थान पर आटो रिक्शा शुरू करवाई।

गृहमंत्री के रूप में मोरारजीभाई ने जनता के हित को ध्यान में रखते हुए छोटे-मोटे अनेक सुधार किए और नए नियम बनाए। आज वे सुधार और नियम हमारे जीवन में इतने सहज बन गए हैं कि बिना उनके हम वर्तमान व्यवस्था की कल्पना भी नहीं कर सकते। उदाहरण के तौर पर उन्होंने सिनेमागृहों एवं नाट्यगृहों में धूम्रपान पर प्रतिबंध लगाया। ट्राम और बसों में भी धूम्रपान पर रोक लगाई।

आजादी मिलने के कुछ समय पहले आई.सी.एस. के अंग्रेज अधिकारियों को दो विकल्प दिए गए थे, जो अधिकारी नौकरी जारी रखना चाहते थे, उन्हें नौकरी पर रखा रहने दिया जाएगा तथा जो नौकरी छोड़ना चाहते थे, उन्हें निवृत्ति की स्वीकृति दी जाएगी। चालीस अंग्रेज अधिकारियों ने निवृत्त होने की इच्छा व्यक्त की। गवर्नर का मानना था कि इन अधिकारियों को सेवा जारी रहने के बारे में समझाया जाना चाहिए। उन्होंने मोरारजीभाई से कहा, "ये सब अधिकारी अगर एक साथ निवृत्त हो जाएंगे तो आपको बिल्कुल नए और गैर अनुभवी अधिकारियों से काम चलाना पड़ेगा। जिससे आपको नुकसान होगा।"

मोरारजीभाई ने उत्तर दिया, "हमने उन्हें आश्वासन दिया है कि अगर वे

नौकरी पर बने रहते हैं तो वे आत्मसम्मान के साथ नौकरी कर सकेंगे। फिर भी अगर वे रहना ही नहीं चाहते, तो और कोई चारा ही नहीं है।''

गवर्नर ने सलाह दी, ''आप उनको अधिक सुविधाएं देकर रहने के लिए मना लें।'' तब मोरारजीभाई ने कहा, ''जो रहना ही नहीं चाहता है, उसकी बेवजह खुशामद करके या उसको अधिक सुविधाएं देकर रखने में मैं विश्वास नहीं करता। ज्यादा गरज़ दिखाने पर वे अधिकारी सरकश हो सकते हैं। इसके बजाय तो हम नए व कम अनुभवी अधिकारियों से शासन चलाना पसंद करेंगे।'' मोरारजीभाई की यह धारणा भी थी कि इस तरह अगर हम अपने देश के देशी अधिकारियों पर भरोसा रखेंगे तो उनमें आत्मविश्वास जागृत होगा और वे अधिक निष्ठा से काम कर सकेंगे। तत्कालीन केंद्रीय सरकार के गृहमंत्री सरदार पटेल ने भी अंग्रेज आई. सी.एस. अधिकारियों के बारे में कुछ ऐसी ही नीति अपनाई थी।

राज्य भर में शराबबंदी

तत्कालीन मुंबई सरकार ने पूरे राज्य में शराबबंदी लागू करने का एक महत्वपूर्ण कार्य किया। 1937 की पहली सरकार ने शराबबंदी लागू करने की शुरुआत तो की थी, लेकिन उसका कार्यकाल मात्र दो वर्ष का ही रहा। अहमदाबाद और मुंबई नगरों से शुरू करके धीरे धीरे एक के बाद एक जिले में क्रमशः नशाबंदी लागू करने का प्रस्ताव था।

1946 में लागू की गई शराबबंदी के उपाय पहली बार से प्राप्त अनुभवों के आधार पर बदले गए थे। ऐसा महसूस किया गया कि एक के बाद एक जिलावार शराबबंदी लागू करने का तरीका ठीक नहीं था। इसलिए जो भी कोई योजना बनाई जाए उसे एक साथ पूरे राज्य में लागू करने का विचार किया गया। पहले वर्ष पूरे राज्य में सप्ताह में दो दिन शराब की दुकानें बंद रखी जाएं, दूसरे वर्ष चार दिन और तीसरे वर्ष छह दिन बंद रखी जाएं तथा चौथे वर्ष से राज्य भर में संपूर्ण शराबबंदी लागू किए जाने का प्रस्ताव था।

मुंबई सरकार को पता लगा कि केंद्रीय सरकार इस बारे में कोई अनुकूल रवैया नहीं अपना रही, इसलिए मंत्रिमंडल ने इस विषय के सारे पहलुओं पर सविस्तार चर्चा की। मोरारजीभाई ने अपने साथी मंत्रियों से कहा कि अगर हमारे मन में इस योजना को लेकर जरा-सी भी आशंका है, तो उसे लागू नहीं करना चाहिए, लेकिन अगर हमारा इरादा दृढ़ है और हमने सोच-समझकर कदम उठाया है तो उससे पीछे नहीं हटना चाहिए। आखिर में सारे मंत्री सहमत हुए और सर्वसम्मति से शराबबंदी लागू करने का निर्णय लिया गया।

योजना के अंतर्गत वर्ष 1950 से पूरे मुंबई राज्य में शराबबंदी लागू की गई। शराबबंदी के कारण मजदूर परिवारों की आर्थिक हालत में काफी सुधार आया।

शराबबंदी लागू होने के कोई एक वर्ष के बाद एक-दो मिल मैनेजरों ने अपना अनुभव मोरारजीभाई को बताया, ''शराबबंदी लागू होने से पहले अपने पुरुषों के लिए दोपहर का खाना लाने वाली स्त्रियों के कपड़े मैले और फटे-पुराने दिखाई देते थे, खाने के समय पति-पत्नी के बीच तकरारें होती रहती थीं क्योंकि अच्छा खाना नहीं बन पाता था, अच्छा खाना बनाने के लिए पर्याप्त पैसे स्त्रियों को नहीं मिलते थे, पुरुष शराब पीने में ही सारे पैसे खर्च देते थे। शराब के कारण मजदूर भी काम में आलस बरतते थे तथा अनुपस्थिति भी बहुत रहती थी। संपूर्ण शराबबंदी लागू होने के बाद खाने की चीजें अच्छी बनने लगीं, पति-पत्नी के बीच तकरारें कम होने लगीं। कपड़े अच्छे और स्वच्छ दिखाई देने लगे। कार्य में उत्साह और दिलचस्पी बढ़ी, अनुपस्थिति कम हुई, मजदूरों के घरों में अच्छे बर्तन आए। यानी अब उनकी स्थिति में सुधार दिखाई देने लगा है।'' उन अंग्रेज मैनेजरों को शुरू में शराबबंदी पर खास भरोसा नहीं था, लेकिन उसके परिणामों को उन्होंने देखा था।

अस्पृश्यता उन्मूलन

कांग्रेस के कार्यक्रमों में शराबबंदी के बराबर ही महत्वपूर्ण स्थान अस्पृश्यता उन्मूलन कार्यक्रम को दिया गया था। ऐसे कार्यों को लागू किए जाने के बारे में कई लोगों की धारणा है कि ऐसे कार्य कानून से नहीं वरन समझदारी से लागू किए जाने चाहिए। ऐसे कार्य में जुटे लोगों का मानना है कि अगर समझ-बूझ को कानूनी समर्थन नहीं मिलता है तो, सामाजिक सुधार आसानी से नहीं हो सकता। मोरारजीभाई का मानना था कि अस्पृश्यता के दूषण को समाज से हटाने के लिए कानून का साधन आवश्यक है। कांग्रेस समझदारी के आधार पर इसका प्रचार कार्य तो कर ही रही थी, अब कांग्रेस सरकार को हरिजनों के लिए मंदिर-प्रवेश एवं होटल जैसे सार्वजनिक स्थानों में अन्य सवर्ण लोगों की तरह समान रूप से प्रवेश करने का अधिकार कानून के जरिए देना था। पाठशालाओं में भी हरिजन बच्चों को बिना भेदभाव के अन्य सवर्ण बच्चों के साथ बिठाने के लिए भी कानून बनाना था।

मुंबई सरकार ने ''हरिजन-मंदिर-प्रवेश'' का कानून बनाया। इसके कारण हरिजन-सेवा का कार्य करने वालों को अच्छी मदद मिली। उसी तरह होटल-रेस्तरां आदि सार्वजनिक स्थानों में भी बिना भेदभाव प्रवेश दिलाने के लिए भी कानून बनाया गया।

जब पाठशालाओं में हरिजन बच्चों को अन्य सवर्ण बच्चों के साथ बिना भेदभाव के बिठाने का कानून बनाया गया तब सवर्णों ने धमकियों के जरिए ऐसा माहौल बनाया जिससे हरिजन लोग अपने बच्चों को पाठशाला भेजें ही नहीं। मोरारजीभाई की सलाह से प्रशासन ने ऐसा आदेश जारी किया कि जिस गांव के ग्रामवासी अपने गांव के हरिजनों को उनके बच्चों को स्कूल भेजने के लिए समझाने

में विफल रहेंगे या उस गांव की पाठशालाओं में आनेवाले हरिजन बच्चों को अलग बिठाया जाएगा तो, उन गांवों की पाठशालाओं को बंद कर दिया जाएगा। उस आदेश के विरुद्ध कई लोगों ने अदालत के द्वार खटखटाए, लेकिन अदालतों ने उन लोगों के विरुद्ध ही अपना निर्णय सुनाया। परिणामस्वरूप हरिजन बच्चे निर्भय होकर पाठशाला जाने और अन्य सवर्ण बच्चों के साथ बैठकर पढ़ने लगे।

आदिवासियों की हालत सुधारने की कोशिशें भी मुंबई सरकार ने कीं। वनों की लकड़ी काटने तथा अन्य ऐसे काम के ठेके अमुक ठेकेदार ही ले लेते थे। जन विभाग के अधिकारी भी उनसे मिले हुए थे। आदिवासी लोग इन ठेकेदारों की मजदूरी ही किया करते थे, तथा उनकी मजदूरी की दरें भी बहुत कम थीं। कांग्रेसी सरकार ने आदिवासियों की सहकारी समितियां बनवाईं तथा उन समितियों को ही वन के कामों के ठेके देने की प्रथा शुरू करवाई। सरकारी समितियों के लिए आदिवासी कार्यकर्ताओं को तैयार करने हेतु प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। आदिवासी बच्चों की शिक्षा के लिए उनके क्षेत्रों में ही पाठशालाएं शुरू कराई गईं। इसके अलावा उनको जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हर तरह से विकसित करने के लिए आश्रमशालाओं की स्थापना की गई। मोरारजीभाई ने वन विभाग के अधिकारियों को समझाया कि हमारा वन विभाग ठेकेदारों के हित की रक्षा के लिए या विभाग के कर्मचारियों के लाभ के लिए नहीं है, उसका उद्देश्य आदिवासियों का हित देखना है।

परिवहन का राष्ट्रीयकरण

मुंबई राज्य की इस दूसरी कांग्रेस सरकार ने अत्यंत लोकोपयोगी एवं लोकहित का एक अन्य अनूठा काम किया था, वह था परिवहन का राष्ट्रीयकरण। उस समय तक राज्य के नगरों के बीच परिवहन का कार्य निजी ठेकेदारों के हाथों में था। उनकी बसों की हालत अत्यंत खस्ता थी फिर भी उसमें कोई सुधार नहीं हो रहा था। इससे लोगों को बहुत परेशानियां आ रही थीं, लोगों की समस्याओं को दूर करने के लिए इन साधनों में सुधार होना आवश्यक था लेकिन कुछ हो नहीं रहा था। इसे देखते हुए मोरारजी ने सोचा कि रेल और बस जैसे यातायात के साधनों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए तथा इन साधनों का संचालन राज्यों के हाथ में होना चाहिए।

यातायात के राष्ट्रीयकरण को लेकर कांग्रेस पार्टी में आपस में ही अंतर्विरोध था, लेकिन आखिर में पार्टी ने मंत्रिमंडल के निर्णय को स्वीकारा। मार्ग परिवहन के संचालन के लिए स्टेट ट्रांसपोर्ट (एस.टी.) कार्पोरेशन मापक संस्थान का गठन किया गया। इसमें पचीस प्रतिशत हिस्सा रेलवे को दिया गया, इससे पूंजी भी प्राप्त हुई तथा रेलवे और बस परिवहन के बीच समन्वय स्थापित किया जा सका। इस

प्रकार केंद्रीय और राज्य सरकार के सहयोग से इस दिशा में शीघ्रता से विकास हुआ। एक वर्ष के बाद उन विरोध करने वाले कांग्रेसियों से मोरारजीभाई ने कहा कि, अगर पुरानी प्रथा फिर से बहाल करनी है तो कहिए। उन लोगों ने स्वीकार किया कि पुरानी व्यवस्था के मुकाबले यह नई व्यवस्था बढ़कर है।

मोरारजीभाई तो भारवाहक ट्रकों का भी राष्ट्रीयकरण करना चाहते थे। ट्रकों में नियमों से अधिक बोझ लादा जाता था। इसके अलावा तस्करी का सामान भी ऐसे ट्रकों से ही आता जाता था। मोरारजीभाई की धारणा थी कि सरकार अगर इन ट्रकों का प्रबंध अपने हाथ में लेती है तो उससे जनता को अच्छी सुविधाएं प्रदान की जाएंगी। उसके लिए केंद्रीय सरकार से अनुमति मांगी गई, लेकिन केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकृति न देने के कारण यह कार्य नहीं हो सका।

न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने की मांग कांग्रेस दल अरसे से करता आ रहा था। मुंबई सरकार ने इस पर अमल करना चाहा। जस्टिस लोकुर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। समिति की सिफारिशें मिलने के बाद इसके लिए कानून बनाने के लिए मुंबई सरकार ने केंद्रीय सरकार से इजाजत चाही। पूरा वर्ष बीतने के बाद भी केंद्रीय सरकार से इजाजत नहीं मिली। मोरारजीभाई ने सरदार पटेल के साथ इसके बारे में बातचीत की। सरदार पटेल का विचार था कि इस समय प्रशासन के पास और भी अधिक जिम्मेदारियां हैं इसलिए ऐसे परिवर्तन जल्दीबाजी में तुरत-फुरत नहीं करने चाहिए। इसके अलावा अन्य राज्यों की तरफ से ऐसी कोई मांग अब तक नहीं उठी थी। फिर भी मोरारजीभाई अपनी बात सरदार को समझाने में सफल रहे। सरदार पटेल की सम्मति के बाद मुंबई सरकार ने कानून बनाकर न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग कर दिया।

रज़ाकारों को सबक सिखाया

देश को आजादी मिली उसके साथ ही देशी रियासतों को भारत सरकार में सम्मिलित करने का भगीरथ पुरुषार्थ सरदार वल्लभभाई पटेल ने शुरू किया। उसके प्रथम चरण में राजाओं को भारत सरकार में विधिपूर्वक सम्मिलित होने के लिए समझाना था। 15 अगस्त 1947 तक जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद को छोड़कर शेष समस्त राजाओं ने अपनी सम्मति प्रदान कर दी थी।

हैदराबाद रियासत का कुछ भाग मुंबई राज्य से मिलता था। हैदराबाद भारत संघ में शामिल न हो, उसके लिए हैदराबाद निजाम पर दबाव डालने तथा हिंदू लोगों को डराने-धमकाने के लिए रज़ाकार नाम के सशस्त्र मुसलमान गुंडों की एक टोली का गठन हुआ था। राज्य में मुसलमानों की आबादी तो केवल दस प्रतिशत ही थी, लेकिन प्रशासक मुस्लिम निजाम होने के कारण रज़ाकार ऐसे रहते थे जैसे

अपना ही शासन क्यों न हो ? वे हिंदू लोगों पर अत्याचार करते थे।

रज़ाकार कई बार मुंबई राज्य की सीमा में घुसकर हिंसा और लूटपाट करके फिर हैदराबाद राज्य में भाग जाते थे। मुंबई सरकार के लिए इससे काफी उलझन भरी स्थिति पैदा हुई। मोरारजीभाई देसाई ने केंद्रीय गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल को पत्र लिखा तथा मांग की कि इस विषय के बारे में केंद्रीय सरकार को सैनिक कार्रवाई करनी चाहिए।

सरदार साहब ने इस विषय में रक्षामंत्री से बातचीत की, लेकिन रजाकारों के खिलाफ सैनिक कार्रवाई करना उनके विचार से ठीक नहीं था। मोरारजीभाई ने कहा कि मेरी पुलिस उन लोगों का पीछा करते हुए उनके राज्य में घुसकर भी उनको सबक सिखाने में नहीं हिचकिचाएगी, और ऐसा करते हुए अगर कोई कानूनी कठिनाई आएगी तो उसकी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूं। सरदार पटेल मोरारजीभाई की बात से सहमत हुए। मोरारजीभाई ने सेना का उपयोग किए बिना ही केवल पुलिस और होमगार्ड्ज का उपयोग करके रजाकारों की घुसपैठ रोकी थी।

हैदराबाद रियासत के पास समुद्रतट नहीं था इसलिए अंग्रेजों के जमाने से ऐसी व्यवस्था चली आ रही थी कि उस राज्य का माल मुंबई बंदरगाह पर उतारा जाता था। इस तरह उतारे गए माल में शस्त्र, गोला बारूद या अन्य सैनिक सामान भी हो सकता था। भारत सरकार द्वारा उसको रोकने में कोई कानूनी उलझन पैदा हो तो क्या हो ? मोरारजीभाई सरदार साहब की इस तरह की उलझनें दूर करने के लिए आगे आए। उन्होंने कहा कि उस सामान को मैं मुंबई में रोक लूंगा। कोई समस्या खड़ी हो तो जिम्मेदारी मेरे ऊपर डाल देना। केवल ये कदम उठाते समय आप हमें रोकें मत।

बाद में हैदराबाद रियासत के विरुद्ध सेना के द्वारा पुलिस कार्रवाई करने की योजना बनाई गई तो एक समस्या पैदा हुई। मुंबई छावनी से सेना ले जाने का सुझाव आया, लेकिन तत्कालीन कठिन परिस्थिति में सेना के सेनापति को मुंबई की सेना बुलाने में खतरा दिखाई दिया तो, मोरारजीभाई ने बिना हिचकिचाए कहा, ''बिना झिझक मुंबई की सेना हैदराबाद ले जाइए, मैं पुलिस से चला लूंगा।''

बापू से आखिरी भेंट

मोरारजीभाई गांधी जी से विभिन्न मुद्दों पर विचार-विमर्श करते रहते थे। गांधी जी के सिद्धांत उनको पसंद थे। कभी दोनों के बीच मतभेद भी हुआ करता था। लेकिन दोनों को स्पष्ट वक्ता होने के कारण अपना मत व्यक्त करने में हिचकिचाहट का अनुभव नहीं होता था। देश को आजादी मिलने के दो महीने पश्चात मोरारजीभाई किसी काम से दिल्ली गए थे। तब उन्होंने गांधी जी से भेंट की थी। नवंबर, 1947 में हुई यह भेंट दोनों की अंतिम भेंट थी। मिलने पर तुरंत गांधी जी बोल उठे,

"मोरारजी, सब कुछ छोड़कर अब हमें निवृत्त हो जाना चाहिए।" सदैव प्रवृत्तिशील स्वभाव के गांधी जी जब निवृत्ति की बात करने लगे तब वह आघातजनक-सा लगा। बापू जी की बात सुनकर मोरारजीभाई ने कहा, "मुझे तो निवृत्त हो जाने में कतई देर नहीं लगेगी। एक ही मिनट में इस्तीफा देकर मुक्त हो जाऊंगा, लेकिन आपने हमें समझाया है कि हमें लोकसंग्रह के लिए भी सतत कर्तव्यपरायण रहना होगा। निवृत्ति लेने से लोकसंग्रह का कार्य कैसे हो सकेगा, बापू !"

"जब हमारी बात कोई सुनता नहीं है, तो हमें किसी दूसरे के ऊपर बोझ क्यों बनना है ? इसीलिए हमें निवृत्त होना है।"

मोरारजीभाई ने कहा, "हो सकता है कि दिल्ली में कोई आपकी नहीं सुनता हो, उसे जानकर मुझे कोई हैरत भी नहीं हो रही है। लेकिन केवल दिल्ली हिंदुस्तान नहीं है। देश में आज भी जनता को अन्य नेताओं के मुकाबले आप पर ज्यादा विश्वास है, और मेरा भी यही विश्वास है। हम आज मुंबई में जो भी कुछ कर रहे हैं, वह आप द्वारा दिखाए गए रास्ते पर चलकर ही कर रहे हैं। आपके कारण ही जनता हमारे नेतृत्व को स्वीकार करती है।

गांधी जी द्वारा निवृत्ति की बात खोखली नहीं थी। एक-दो साथियों के द्वारा बताई गई बात के अनुसार गांधी जी ने पिछली रात लगभग तय-सा कर लिया था कि वे निवृत्त होकर देव प्रयाग चले जाएंगे। तभी तो उन्होंने मोरारजीभाई से मिलते ही निवृत्ति की बात की थी। लेकिन हो सकता है, कि मोरारजीभाई से हुई बात के कारण या फिर अन्य किसी वजह से उन्होंने निवृत्ति का विचार छोड़ दिया।

7
मुंबई के मुख्यमंत्री

आजाद भारत के नवनिर्मित संविधान के अनुसार प्रथम चुनाव 1952 में होने वाले थे। बाला साहब खेर यह चुनाव नहीं लड़ना चाहते थे, क्योंकि सबकी आम धारणा थी कि मंत्रिमंडल में उनके बाद का स्थान रखने वाले मोरारजीभाई देसाई अब की बार मुख्यमंत्री होंगे। प्रशासनिक निपुणता और अनुभव की दृष्टि से भी वे इस पद के लिए सबसे अधिक उपयुक्त माने जाते थे, लेकिन मोरारजीभाई उस पद को पाना नहीं चाहते थे। उनका मानना था कि अगले वर्ष मुंबई राज्य के विभाजन की मांग उठेगी, मोरारजी इस मांग के विरुद्ध थे। उनके विचार से वर्तमान स्थिति अर्थात त्रिभाषी मुंबई राज्य देश की एकता के लिए लाभदायी लग रहा था। अपने ऐसे दृढ़ विचार के कारण उन्हें अपने ही साथियों से टकराना पड़ सकता था। इसलिए वे चुनाव ही लड़ना नहीं चाहते थे, पर, दूसरी ओर उन्होंने यह भी सोच रखा था कि जनसेवा कांग्रेस के माध्यम से ही करता रहूंगा। इसलिए वे कांग्रेस और अपने साथियों द्वारा जो जिम्मेदारी सौंपी जाए उससे पीछे हटना भी नहीं चाहते थे।

मोरारजीभाई ने बलसाड चुनाव क्षेत्र से उम्मीदवारी की। उस समय समाजवादी पार्टी के प्रत्याशी डा. अमूल देसाई से 219 मतों से पराजित हो गए। मोरारजीभाई ने मतों की पुनः गणना कराने के लिए दुबारा गिनती शुरू की। इस बार आगामी गणना की गलतियां निकलती गई और अंतर कम होता गया, जब केवल 19 मत का अंतर रह गया तब ऐसा लगने लगा कि बाकी बची हुई पेटियों के मतों की पुनः गणना करने के बाद शायद मोरारजीभाई की जीत होगी। लेकिन कुछ लोगों ने उन्हें सलाह दी कि पुनः हो रही गणना को रुकवाइए। क्योंकि आप गृहमंत्री थे, और उससे आप अपने पद का अनुचित लाभ ले रहे हैं, इस तरह की बातें जनता में फैल रही हैं। मोरारजीभाई ने भी स्वीकार किया कि इससे अपनी और कांग्रेस की अनावश्यक बदनामी होगी, अतः उन्होंने पुनः हो रही गणना को वहीं रुकवा दिया और 19 मतों से पराजय स्वीकार कर ली।

चुनाव हार जाने के बाद मोरारजीभाई तुरंत त्यागपत्र देना चाहते थे, लेकिन बाला साहब खेर ने उनको रोका और कहा कि, आपको उपचुनाव लड़ना है तथा मुंबई राज्य के मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी का वहन भी करना है। मोरारजीभाई के मना करने पर बाला साहब ने कहा कि मुख्यमंत्री पद के लिए अगर सभी को स्वीकार्य कोई व्यक्ति है, तो वह आप ही हैं। आप जैसा दूसरा आदमी हमें नहीं मिल सकता। मोरारजीभाई ने कहा, "मैं आपकी बात को नहीं समझ सकता हूं। मेरे विचार से चुनाव में पराजय होने का मतलब यह है कि मुझे इस स्थान को छोड़ देना चाहिए और यही इच्छा ईश्वर की भी होगी।" लेकिन मुख्यमंत्री बाला साहब खेर, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य एवं मुंबई राज्य की चारों प्रदेश कांग्रेस समितियों ने उनसे मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी स्वीकारने का आग्रह किया। मोरारजीभाई ने इस पर किशोरलाल मराइवाला से, जो गांधी विचार के मर्मज्ञ माने जाते थे सलाह ली तो उन्होंने भी यही कहा कि बाला साहब जो कहते हैं, वही करना आपका धर्म है। आखिर में मोरारजीभाई चुनाव लड़ने के लिए सहमत हुए।

उपचुनाव होने तक तो कुछ समय लगेगा ही, तब तक मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी का क्या हो ? उस समय विधायिका के उच्च सदन (विधान परिषद) में अहमदाबाद के स्थानीय का एक स्थान रिक्त था। मोरारजीभाई उस स्थान से चुने गए। तत्पश्चात उनका चुनाव विधानसभा कांग्रेस दल के नेता के रूप में भी सर्वसम्मति से हुआ और वे मुंबई राज्य के मुख्यमंत्री बन गए। तीन महीने के बाद अहमदाबाद के मजदूर क्षेत्र की एक सीट रिक्त हुई और वे वहां से उपचुनाव जीत कर विधानसभा में आए।

मोरारजीभाई ने मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी के साथ गृहमंत्री की जिम्मेदारी भी संभाली। उनके प्रिय विभाग तो कृषि और शिक्षा थे, लेकिन मुंबई राज्य के मंत्रिमंडल में कोई बारह वर्ष तक अपना योगदान देने के बावजूद उन्हें ये विभाग नहीं मिल पाए। 1937-39 के दौरान उन्होंने राजस्व मंत्रालय का कार्य देखा था, उस समय इस मंत्रालय के अंतर्गत कृषि विभाग भी आ जाता था, लेकिन वित्तमंत्री श्री ए.बी. लट्ठे के पास कार्य बोझ कम होने के कारण कृषि विभाग उनको सौंपा गया था। 1946 से दस वर्ष तक मोरारजीभाई को गृह मंत्रालय की जिम्मेदारी सौंपी गई।

मोरारजीभाई के मुख्यमंत्रीत्व काल के दौरान शिक्षा के माध्यम का प्रश्न चर्चा में काफी रहा। मोरारजीभाई का मानना था कि हमारे देश में बुद्धि की कमी नहीं है, फिर भी देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासन के लिए जितने विशेषज्ञ चाहिए, नहीं मिल रहे। उसका कारण उनके विचार से विदेशी भाषा में शिक्षा था। वे मानते थे कि आखिर तक मातृभाषा में ही शिक्षा दी जानी चाहिए।

मुंबई सरकार ने मुंबई राज्य में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा मातृभाषा में ही देने की नीति अपनाई। लेकिन कालेज एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम को लेकर मतभेद जारी रहा। मोरारजीभाई मानते थे कि उच्च शिक्षा के लिए मातृभाषा और हिंदी दोनों माध्यम हों। गुजरात विश्वविद्यालय की स्थापना से ही वहां पर उच्च शिक्षा का माध्यम गुजराती और हिंदी रखा गया। लेकिन गुजरात के कई साथी चाहते थे कि गुजरात में उच्च शिक्षा का माध्यम केवल गुजराती ही होना चाहिए। एक मत यह भी था कि उच्च शिक्षा का माध्यम गुजराती के बजाय हिंदी और अंग्रेजी ही होना चाहिए। इस पर गुजराती के पक्षधरों को लगा कि इस लड़ाई से तो शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही कायम रह जाएगा और हिंदी से भी गुजराती भाषा का नुकसान हो सकता है, इसलिए वे लोग विश्वविद्यालय की सेनेट में प्रस्ताव लाए कि उच्च शिक्षा की कक्षाओं में भी केवल गुजराती माध्यम ही हो। यह प्रस्ताव बहुमत द्वारा पारित हुआ। उसके बाद मोरारजी ने गुजराती के साथ हिंदी को भी रखने का अपना आग्रह छोड़ दिया।

उस समय मुंबई का अंग्रेजी समाचारपत्र 'टाइम्स आफ इंडिया' मुंबई सरकार का और विशेष करके मोरारजी देसाई का जोरदार आलोचक था। आलोचना करना तो अखबार का अधिकार भी है और धर्म भी, यह मोरारजीभाई समझते थे। लेकिन यह अखबार गंदी भाषा में व्यक्तिगत चारित्र्य हनन करने लगा था, इसलिए मुंबई सरकार ने उस अखबार को सरकारी विज्ञापन देना बंद कर दिया। इससे 'टाइम्स आफ इंडिया' पत्र के संपादक ने प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से भेंट की तथा मोरारजी देसाई के विरुद्ध शिकायत की। जवाहरलाल नेहरू ने तो उलटा मोरारजीभाई को पत्र लिखकर उनके रवैये का समर्थन किया। इस तरह संपादक का बस नहीं चला। आखिर में उस अखबार ने अपना तरीका बदला, तब सरकार की तरफ से पुनः विज्ञापन देना शुरू हुआ।

इस घटना के कुछ अरसे बाद 'टाइम्स' की मालिकी दूसरे लोगों के हाथों में चली गई। नए मालिकों ने मोरारजीभाई से कहा कि अगर आप चाहते हैं तो वे 'टाइम्स आफ इंडिया' के संपादक को बदल दें। यह सुझाव मोरारजीभाई को ठीक नहीं लगा। इसके उत्तर में मोरारजीभाई ने कहा कि आप लोगों को ऐसा नहीं पूछना चाहिए और मेरे लिए भी संपादक को बदलने के बारे में कुछ कहना ठीक नहीं होगा। मैं प्रेस की आजादी का मानने वाला हूं।

भारत की आजादी के बाद भी गोआ, दमन, दीव, दादरा और नगर-हवेली पुर्तगालियों की हुकूमत में थे। गोआ, दीव और दमन समुद्रतट पर होने के कारण पुर्तगाली सरकार वहां सेना भेज सकती थी। इन क्षेत्रों की आजादी के लिए राममनोहर लोहिया एवं अन्य समाजवादी नेताओं ने सत्याग्रह किया किंतु, सफलता नहीं मिली। आखिर 1961 में भारत सरकार ने सैनिक कार्रवाई करके उन प्रदेशों

पर अपना अधिकार कर लिया।

दादर और नगर-हवेली की परिस्थिति भिन्न थी, वे क्षेत्र समुद्रतट पर नहीं थे। वे चारों ओर से मुंबई राज्य के क्षेत्रों से घिरे हुए थे। पुर्तगाली सरकार अगर वहां सेना भेजना भी चाहे तो उसे मुंबई राज्य के क्षेत्र में से होते हुए ही भेजा जा सकता था। इस स्थिति का लाभ उठाकर कुछ गोआवासी नेताओं ने दादरा और नगर-हवेली को मुक्त कराने के लिए लड़ाई चलाने पर विचार किया। उन्होंने मोरारजीभाई से मिलकर उनकी सलाह एवं मदद मांगी। मोरारजीभाई ने उनसे कहा, "अगर आप लोग उस क्षेत्र में घुसकर उस पर अपना क़ब्जा करना चाहते हैं तो हो सकेगा। क्योंकि पुर्तगाली सरकार गोआ से वहां तक सेना नहीं भेज सकेगी और हम उसकी सेना को अपने और क्षेत्र से गुजरने नहीं देंगे। इतना आश्वासन मैं जरूर दे सकता हूं।"

मोरारजीभाई ने दादरा और नगर-हवेली के चारों ओर मुंबई राज्य की रिजर्व पुलिस के जवान तैनात कर दिए। ये जवान देखने में सेवा के जवान जैसे ही लगते थे। तत्पश्चात सत्याग्रही लोग दादरा और नगर-हवेली की सीमा में घुसे। पुर्तगाल शासन के अधिकारी लोग मुंबई राज्य की रिजर्व पुलिस के जवानों को सेना के जवान समझ कर भाग खड़े हुए, तथा सत्याग्रहियों ने उस क्षेत्र पर अपना कब्जा कर लिया।

बाद में पुर्तगाली सरकार ने दादरा और नगर-हवेली में सेना को भेजना चाहा। उसने भारत सरकार से सेना को मुंबई राज्य के क्षेत्र से गुजारने की अनुमति चाही, लेकिन भारत सरकार ने इंकार कर दिया। पुर्तगाली सरकार ने भारत सरकार के निर्णय के विरुद्ध विश्व-न्यायालय में शिकायत की किंतु न्यायालय ने उस शिकायत को खारिज कर दिया।

राज्य पुनर्रचना आयोग

मुख्यमंत्रीत्व के चारों वर्ष मोरारजीभाई के राजकीय जीवन के उत्तम चार वर्ष होने चाहिए थे, किंतु उसमें कई विघ्न आए। सबसे बड़ा विघ्न भाषाई स्तर पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग से उठा। मोरारजीभाई भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के विरोधी थे इसलिए उनको राज्य पुनर्गठन आयोग के गठन को लेकर ही आपत्ति थी। उनका मानना था कि कम से कम दस वर्ष तक तो वर्तमान व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए, लेकिन देश भर में इस बात की जोरदार मांग उठ रही थी। इसलिए भारत सरकार को राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन करना ही पड़ा।

मुंबई की जनता चाहती थी कि मुंबई राज्य के मराठी भाषी क्षेत्रों को अलग किया जाए तथा मध्य प्रदेश एवं हैदराबाद रियासत के मराठी भाषी क्षेत्रों को उसमें मिलाकर संयुक्त महाराष्ट्र का गठन किया जाए। उनका यह भी आग्रह था कि मुंबई

नगर को भी सूचित महाराष्ट्र में ही रखा जाए।

राज्य पुनर्गठन आयोग ने सितंबर, 1955 में अपनी रिपोर्ट केंद्रीय सरकार को पेश की, जिसे केंद्रीय सरकार ने अक्तूबर में सार्वजनिक किया।

उसके बारे में पहली गलती यह हुई कि प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस रिपोर्ट में की गई सिफारिशों पर अपना असंतोष सार्वजनिक रूप से प्रकट किया। अगर उन्होंने आयोग द्वारा की गई सिफारिशों को यथास्थिति स्वीकार कर लिया होता तो सभी को आयोग की सिफारिशें बंधनरूप समझकर स्वीकार करनी पड़तीं, लेकिन नेहरू के असंतोष के पीछे पीछे और कई क्षेत्रों में भी विरोध के बवंडर उठने लगे। नेहरू का असंतोष आयोग द्वारा मध्यप्रदेश के पुनर्गठन की सिफारिशों को लेकर था, लेकिन उसके कारण संयुक्त महाराष्ट्र के पक्षधरों को विरोध करने की प्रेरणा मिली।

आयोग ने संयुक्त महाराष्ट्र की मांग को अस्वीकार कर दिया तथा मुंबई राज्य को यथावत रखा, पर विदर्भ को अलग राज्य देने की सिफारिश की थी। इस बात को लेकर मुंबई राज्य में संयुक्त महाराष्ट्र के लिए जोरदार आंदोलन की शुरुआत हुई। जगह जगह दंगे हुए। उसके प्रत्याघात के रूप में गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति ने गुजरात, महाराष्ट्र और मुंबई ऐसे तीन विभागों के पुनर्गठन के लिए प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव के अनुसार गुजरात और महाराष्ट्र को अलग राज्य और मुंबई को केंद्र शासित क्षेत्र रखने की सिफारिश थी। उसके बाद कांग्रेस की कार्यकारिणी ने भी इन तीन विभागों के गठन का प्रस्ताव पारित किया। कार्यकारिणी के इस प्रस्ताव ने मुंबई राज्य में तीव्र विरोध पैदा किया। मुंबई में बहुत दंगे हुए। चौपाटी पर कांग्रेस द्वारा आयोजित सभा पर पथराव हुआ। मोरारजीभाई एक पत्थर की चोट से साधारण घायल हुए।

जनवरी, 1956 में केंद्रीय सरकार ने राज्यों के पुनर्गठन के बारे में अपने निर्णय की घोषणा की। जिसमें गुजरात प्रदेश कांग्रेस समिति एवं कांग्रेस कार्यकारिणी के प्रस्तावों के अनुसार ही गुजरात और महाराष्ट्र को राज्य का स्तर एवं मुंबई को केंद्र शासित क्षेत्र के गठन का निर्णण लिया गया था।

महाराष्ट्र में दंगे

मुंबई को महाराष्ट्र से अलग करने की घोषणा को लेकर महाराष्ट्र में प्रबल रोष जाग उठा। मुंबई राज्य में जगह जगह पर दंगे हुए। खासकर गुजराती लोग हमले के शिकार बने। गुजराती स्त्री-पुरुषों को तरह तरह से परेशान किया गया। गुजराती व्यापारियों की दुकानें लूटी गईं। दंगाइयों पर काबू पाने के लिए पुलिस को गोलीबारी करनी पड़ी, जिसमें करीब अस्सी लोग मारे गए। हालांकि मोरारजीभाई को इस बात से काफी रंज था, पर मुंबई नगर की सुरक्षा एवं शांति को बहाल

करने के लिए सरकार के लिए यह आवश्यक भी था। मराठी भाषी अखबारों ने अत्यंत हल्की और लगभग गालियों की भाषा में मोरारजी की आलोचना की तथा उन्हें बहुत बदनाम किया गया, जिससे वे मराठी समाज के तिरस्कार के पात्र बने। दंगे के समय प्रधानमंत्री नेहरू ने मोरारजीभाई से टेलीफोन पर कहा कि आवश्यकता पड़ने पर सेना की सहायता लेने में मत हिचकिचाना। लेकिन मोरारजीभाई ने केवल पुलिस से ही काम लिया और दंगे रोके।

मुंबई राज्य का तीन विभागों में गठन केंद्रीय सरकार ने स्वीकार किया इसलिए गुजरात के नेता और जनता खुश थी। इस गठन का यश गुजरात की जनता ने मोरारजीभाई को दिया। मई के महीने में जब वे अहमदाबाद गए तो वहां की जनता ने उन पर फूलों की बारिश की लेकिन मोरारजीभाई उससे तनिक भी नहीं इतराए। लोकमत की लहरों को वे जानते थे। कार में साथ बैठे अपने अन्य साथियों से उन्होंने कहा कि आज हमारे घर फूल बरसाने वाले लोग कल पत्थर भी बरसा सकते हैं और यह कोई आश्चर्य नहीं होगा।

बृहत द्विभाषी राज्य

सरकार ने राज्य पुनर्गठन के अपने निर्णय को लागू करने के लिए लोकसभा में विधेयक पेश किया। जून के महीने में जब संसद में विधेयक पर विचार-विमर्श हो रहा था, तब मुंबई राज्य की इस समस्या पर राज्य के कुछ नेताओं ने विचार किया। अब उन्होंने एक विशाल मुंबई राज्य के गठन का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्तावित बृहत मुंबई राज्य में गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ क्षेत्र, समग्र महाराष्ट्र, विदर्भ, हैदराबाद रियासत का मराठी भाषी क्षेत्र (मराठवाड़ा) तथा मुंबई नगर को भी शामिल करने का सुझाव था। इस तरह इस प्रस्तावित बृहत मुंबई राज्य में सभी गुजराती और मराठी भाषी क्षेत्रों को शामिल किया जाना था। इस प्रस्ताव के कारण मुंबई नगर को लेकर हो रही लड़ाई को रोका जा सकता था।

मोरारजीभाई ने हिचकिचाते हुए भारी मन से इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दी। हालांकि उनके विचार भी इस तरह के बृहत मुंबई राज्य के गठन के पक्ष में ही थे, लेकिन महाराष्ट्र में प्रस्ताव के विरुद्ध उग्र वातावरण था। गुजरात में भी कई लोग अलग राज्य के गठन के पक्ष में थे, तभी तो उन लोगों ने मुंबई राज्य का तीन विभागों में गठन करने पर अपनी स्वीकृति दी थी। पर इन नई परिस्थितियों में वे बृहत मुंबई राज्य के गठन पर अपनी स्वीकृति कैसे दे सकते हैं ? लेकिन जवाहरलाल नेहरू इस बात को लेकर अत्यंत व्यथित थे, उसे देखकर मोरारजीभाई ने अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन उन्होंने उस प्रस्ताव पर आग्रह जताने वाले नेताओं से कहा कि, अब आपको आश्वासन देना होगा कि इस सूचित बृहत मुंबई राज्य का विभाजन अब कभी नहीं होगा। आखिर सभी ने मोरारजीभाई को मौखिक

आश्वासन दिया।

योजना पर अपनी स्वीकृति देने के बाद मोरारजीभाई ने गुजरात कांग्रेस के सदस्यों को इस योजना को स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया। कुछ अन्य नेताओं ने महाराष्ट्र कांग्रेस के सदस्यों को समझाया। दोनों प्रदेश के सदस्यों ने अनिच्छा होने पर भी परिस्थिति को देखते हुए जबरन प्रस्ताव पर अपनी सहमति दे दी। कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस पर अपना प्रस्ताव पारित किया तथा संसद में भी इस आशय का विधेयक पारित किया गया।

गुजरात में दंगों के खिलाफ अनशन

गुजरात प्रदेश कांग्रेस कार्यकारिणी एवं केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत तीन विभागों के प्रस्तावित राज्य पुनर्गठन की योजना के स्थान पर एक विशाल मुंबई राज्य के गठन का निर्णय किया गया। उस निर्णय के विरोध में गुजरात में दंगे होने लगे। इंदुलाल याज्ञिक के नेतृत्व में गठित महागुजरात समिति ने अलग गुजरात के गठन को लेकर आंदोलन शुरू कर दिया। उस महागुजरात समिति के नेतृत्व में छात्रों ने एक बार कांग्रेस हाउस पर हल्ला बोल दिया और वहां पर तोड़-फोड़ की। छात्रों की भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस को गोलीबारी करनी पड़ी जिसके कारण पांच छात्रों की मौत हो गई। हालात का जायजा लेने और पुनः शांति स्थापित कराने के लिए मुख्यमंत्री मोरारजीभाई अहमदाबाद गए।

अहमदाबाद में मोरारजीभाई ने एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। महागुजरात समिति ने आदेश जारी किया कि मोरारजीभाई की उस सभा में कोई नहीं जाएगा, एक तरह का जनता कर्फ्यू घोषित किया गया। सब लोग घर में ही रहे, सभा नहीं की जा सकी। मोरारजीभाई को लगा कि जनता को सभा में आने से जबरन एवं हिंसा के माध्यम से रोका जा रहा है। वे मानते थे कि महागुजरात के लिए आंदोलन चलाना किसी का भी लोकतांत्रिक अधिकार है, लेकिन जनता को सभा में आने से जबरन रोकना उनके लोकतांत्रिक अधिकार पर आक्रमण है। उन्होंने इस स्थिति के विरोध में, अहमदाबाद में उनके भाई अंबेलाल भाई के घर पर ही अनशन शुरू कर दिया। अनशन का उद्देश्य इस तरह की स्थिति का निर्माण करना था जिससे जनता अपनी इच्छा के अनुसार सभा में जा सके।

अनशन आठ दिन तक चला। कांग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेबरभाई (उछरंग राय ढेबर) आंदोलन के नेताओं एवं नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों से मिले, उन्हें समझाया। आठवें दिन सभा हुई। पांच-सात हजार लोग ही हिम्मत जुटाकर सभा में आए। महागुजरात समिति ने उसी समय एक अन्य स्थान पर अपनी समांतर सभा का आयोजन किया, जिसमें काफी बड़ी तादाद में लोग इकट्ठे हुए। मोरारजीभाई की सभा में कुछ असामाजिक तत्वों ने सतत पथराव किया। सभा में एकत्रित हुए लोग

पथराव होने के बावजूद कोई 45 मिनट तक चले भाषण के दौरान शांति से बैठे रहे। सभा के कुछ स्वयंसेवक मोरारजीभाई के ऊपर आने वाले पत्थरों को रोक लेते थे। मोरारजीभाई ने पुलिस को स्पष्ट आदेश दिया था कि पथराव करने वालों के विरुद्ध कोई कार्रवाई न की जाए। सभा हो सकी इसलिए मोरारजीभाई ने साथी कार्यकर्ताओं एवं प्रतिष्ठित नागरिकों का अनशन तोड़ने का अनुरोध स्वीकार कर लिया। लेकिन उसमें कुछ जल्दीबाजी हुई इस बात का अहसास उनको जीवनपर्यंत खलता रहा।

इस अनशन के उद्देश्य के बारे में मोरारजीभाई का कहना था कि, अगर उन्होंने उपवास नहीं किए होते तो राज्य भर में और दंगे भड़क सकते थे, क्योंकि पृथक महागुजरात के बारे में पनप रही भावना जनता में जोर शोर से प्रसारित हो रही थी। अगर दंगे राज्य भर में फैले होते तो बड़ी तादाद में जान और माल की हानि होने की आशंका थी। उसे रोकने के लिए पुलिस को भी गोलीबारी जैसे कड़े उपाय का सहारा लेना पड़ता, परिणामस्वरूप राज्य भर में 300-400 लोगों को जान से हाथ धोना पड़ता, फिर शांति की स्थापना करने में भी काफी दिक्कतें आ सकती थीं, मुश्किलें पैदा हो सकती थीं।

विशाल मुंबई राज्य का मुख्यमंत्री बनने की ईच्छा मोरारजीभाई को नहीं थी। इस पद की जिम्मेदारी संभालने के लिए प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और गोविंद वल्लभ पंत दोनों का आग्रह होने पर भी मोरारजीभाई ने अस्वीकार किया। उन्होंने कहा कि बृहत द्विभाषी मुंबई राज्य का मुख्यमंत्री कोई महाराष्ट्रीय ही होना चाहिए, इसलिए मुख्यमंत्री के स्थान पर श्री यशवंत राव चव्हाण की नियुक्ति हुई।

8

केंद्रीय मंत्रिपरिषद में

मोरारजीभाई ने सोच रखा था कि विशाल द्विभाषी मुंबई राज्य का गठन होने पर मुख्यमंत्री का पद छोड़कर संगठन या रचनात्मक कार्य में जुट जाऊंगा। लेकिन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू काफी अरसे से उनसे केंद्रीय मंत्रिपरिषद में शामिल होने का आग्रह कर रहे थे। अब उन्होंने मोरारजीभाई को दिल्ली बुला ही लिया तथा केंद्रीय मंत्रिपरिषद में स्थान देकर व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय की जिम्मेदारी सौंप दी। मंत्रिपरिषद में उनको जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और गोविंद वल्लभ पंत के बाद चौथा स्थान दिया गया।

1957 के चुनावों के बाद भी मोरारजीभाई व्यापार और उद्योग मंत्रालय के मंत्री के रूप में कार्य करते रहे, लेकिन 1958 में मुंदड़ा कांड के कारण तत्कालीन वित्तमंत्री टी.टी. कृष्णामाचारी ने त्यागपत्र दे दिया और वित्त मंत्रालय मोरारजीभाई देसाई को सौंपा गया।

केंद्रीय वित्तमंत्री के रूप में मोरारजीभाई ने संसार के कई देशों का दौरा किया। शुरुआत अगस्त, 1958 में ब्रिटेन की यात्रा से हुई। निसर्गोपचार में विश्वास करने वाले मोरारजीभाई रोग प्रतिरोधक टीके लेने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए सभी देशों के अधिकारी उनको इस नियम से छूट दे देते थे। जिस देश की तरफ से इस तरह की छूट न मिले उस देश का दौरा स्थगित करने के लिए भी वे तैयार रहते थे। ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान और बहुत सारे अन्य देशों ने बिना टीका लगाए ही अपने देश का दौरा करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया।

विदेश यात्रा के दौरान मोरारजीभाई भारत का सही पक्ष किसी के सामने रखने में कहीं भी और कभी भी हिचकिचाते नहीं थे। उनके ऐसे स्वभाव से कभी कभार कोई बुरा भी मान लेता था, लेकिन उनके स्वभाव की निष्कपटता बाद में ऐसे लोगों को और नजदीक लाती थी।

1959 के उत्तरार्ध में मोरारजीभाई एक बार न्यूयार्क गए। उस समय टी.वी. पर उनकी भेंट को दिखाया जाना था। टी.वी. कंपनी के प्रबंधकों में से किसी ने मोरारजीभाई से कहा, "कार्यक्रम के दौरान आपका परिचय देते समय मैं आपको भारत के भावी प्रधानमंत्री के रूप में बताना चाहूंगा।" तब मोरारजीभाई ने कहा, "आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए।"

टी.वी. वाले ने कहा, "यह हमारी प्रेस वालों की आजादी है।"

"तो फिर आपको इंटरव्यू दिया जाए या नहीं यह मेरी भी आजादी है न ?"

इतना कहते ही मोरारजीभाई खड़े हो गए, वह महाशय मोरारजीभाई का स्वभाव जान गए और उस वाक्य को जिसमें उन्हें भारत का भावी प्रधानमंत्री कहा जाना था, हटाने पर सहमत हो गए।

गुजरात और महाराष्ट्र अलग हुए

इंदिरा गांधी को फरवरी, 1951 में कांग्रेस अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने भी बृहत मुंबई राज्य के विभाजन की बात छेड़ी। मोरारजीभाई को उनकी उस बात पर आपत्ति थी, लेकिन यशवंत राव चव्हाण को आशंका थी कि वे गुजरात और महाराष्ट्र को साथ साथ रखने में कामयाब नहीं हो सकेंगे। उन्होंने अपनी यह आशंका जताई भी। उनके द्वारा ऐसा कहने पर 1956 में मोरारजीभाई को स्थानीय नेताओं द्वारा दिए गए मौखिक आश्वासन को नजरअंदाज करते हुए नेहरू और अन्य नेताओं ने बृहत मुंबई राज्य के द्विभाषी विभाजन को अपनी स्वीकृति दे दी। जब बात काफी आगे बढ़ गई तभी मोरारजीभाई को उसकी सूचना दी गई इसलिए मोरारजीभाई के लिए उस पर अपनी सहमति देने के अतिरिक्त और कोई चारा भी नहीं था। चव्हाण मोरारजीभाई के लिए मित्र सरीखे और शिष्य समान थे। उन्होंने उनसे पूछा कि आपने यह बात मुझसे पहले क्यों नहीं बताई ? तो चव्हाण ने उनसे कहा कि आप इस बात का विरोध करेंगे ऐसी मुझे आशंका थी। 1 मई 1960 से गुजरात और महाराष्ट्र दो अलग राज्यों के रूप में अस्तित्व में आए।

1956 में जब मोरारजीभाई देसाई केंद्रीय मंत्रिपरिषद में सम्मिलित हुए तब उनको संसदीय कांग्रेस दल में चौथे नंबर का स्थान दिया गया था। लेकिन 1958 में मौलाना आज़ाद और 1961 में पंडित पंत का निधन होने के कारण उनका क्रम नेहरू के बाद दूसरा हो गया। परिपाटी के अनुसार दूसरे नंबर पर जो मंत्री होता है, उसको सदन में पार्टी का उपनेता बनाया जाता है, लेकिन नेहरू ने पार्टी के संविधान का उल्लंघन करके एक के स्थान पर दो उपनेता बनाए। उनमें से एक लोकसभा से और दूसरा राज्यसभा से, इतना ही नहीं उस स्थान पर काफी कनिष्ठ नेताओं की नियुक्तियां कीं। इससे लोगों में यह धारण पनपी कि मोरारजीभाई को उपनेता बनने से रोकने के लिए ही नेहरू ने ऐसी व्यवस्था कायम की है। शायद

नेहरू का आशय यह भी हो सकता था कि वह ऐसी संभावना आने ही नहीं देना चाहते थे जिसमें उनके बाद कोई उपनेता ही प्रधानमंत्री का स्थान ग्रहण करे।

1961 में गोआ को आजादी दिलाने के बदले अन्य कोई विकल्प भारत के पास नहीं रह गया था इसलिए उसने सेना भेजकर गोआ को अपने साथ ले लिया। भारत सरकार के इस कदम पर मोरारजीभाई को आपत्ति थी। उनके विचार से सैनिक कार्यवाही के कारण गोआ को भारत संघ में जोड़ा तो गया लेकिन इससे भारत की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुंचा। इसलिए, जब कांग्रेस कार्यसमिति में सरकार के उस कदम को पार्टी की नीति के अनुरूप बताने वाला प्रस्ताव पेश हुआ तब उन्होंने अपनी आपत्ति जताई, लेकिन अन्य सभी सदस्यों के प्रस्ताव के पक्ष में होने के कारण प्रस्ताव पारित हो गया। मोरारजीभाई का मानना था कि रक्षा मंत्री वी.के. कृष्णमेनन मुंबई से चुनाव लड़ना चाहते थे, इसलिए उन्होंने यह कदम उठवाया था।

ऐसी अनेक बातों में मोरारजीभाई की एक विशेषता थी कि चाहे पार्टी की समितियों में हों या देश की संसद में, किसी भी मामले में उनको जो सही लगे, उस बात को वे बिना हिचकिचाए निर्भिकता से कह देते थे। अपने विचार से कोई बात सही लगी तो उसका समर्थन करते थे, और जिस बात को अयोग्य या अनुचित मानते थे उसका डटकर विरोध करते थे। लेकिन जब कोई प्रस्ताव, चाहे उसको वे सही न भी मानते हों, पर बहुमत से पारित किया गया हो तो उसको देश की नीति के रूप में स्वीकार कर लेते थे, तथा उस पर निष्ठापूर्वक अमल करते थे। उतना ही नहीं विदेश यात्रा के दौरान आवश्यकता पड़ने पर उस नीति के पक्ष में अपनी तमाम तर्क शक्ति लगाकर बचाव भी करते थे। उस समय वे भारत के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में, उस नीति की जिम्मेदारी को अपना मानकर बात करते थे। उनके मुख से ऐसा कभी सुनने को नहीं मिलता था कि, "मैं तो इस नीति के खिलाफ था, लेकिन बहुमत इस नीति के साथ था इसलिए मेरा बस नहीं चला, बाकी मैं व्यक्तिगत रूप से इसके लिए जिम्मेदार नहीं हूं। अमेरिका की यात्रा के दौरान वहां के राष्ट्रपति केनेडी के साथ एक बार गोआ को लेकर चर्चा हुई तब मोरारजीभाई ने केनेडी को समझाया कि जनता की प्रचंड भावना और मांग के कारण सरकार के पास और कोई विकल्प भी नहीं था।

आसाम राज्य से नागालैंड को अलग करने का प्रस्ताव आया। उस समय मोरारजीभाई ने उस प्रस्ताव का विरोध किया। उनको आशंका थी कि इस कदम के कारण पृथकता की और मांगें भी उठेंगी और देश की एकता के लिए खतरा पैदा हो जाएगा। लेकिन उस क्षेत्र के हालात ही ऐसे थे जिनके कारण नागालैंड को आसाम से अलग किए बिना और कोई चारा नहीं रहा था।

ज़िद करने पर पछताए

अक्तूबर, 1962 में बिना किसी वजह चीन ने भारत के नेफा (अरुणाचल प्रदेश) पर आक्रमण कर दिया। उस समय मोरारजीभाई ने सुझाव दिया कि तिब्बत में आए हुए चीनी सैनिक अड्डों पर बमवर्षा की जाए। इस पर नेहरू का कहना था कि ऐसा करने पर चीन हमारे नगरों पर भी बम बरसा सकता है। इस संभावना को देखते हुए मोरारजीभाई के सुझाव को उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

हमारे देश में विदेशों से सोना तस्करी द्वारा आता रहता था, उसे रोकने के लिए मोरारजीभाई अरसे से देश में सोने के क्रय-विक्रय पर प्रतिबंध लगाना चाहते थे। चीन के आक्रमण के कारण फैले देशप्रेम के वातवारण में देश की जनता स्वर्ण नियंत्रण के सरकारी कदम का समर्थन करेगी, ऐसी धारणा मोरारजीभाई की थी इसलिए स्वर्ण नियंत्रण कानून बनाया गया। इसके साथ ही अनिवार्य बचत योजना भी लागू की गई। संसद में विरोध हुआ कि अनिवार्य बचत योजना असवैधानिक है। मोरारजीभाई ने तो पहले से ही कानूनी विशेषज्ञों की राय जान ली थी, इसलिए उन्होंने कहा कि उसमें कोई असवैधानिक बात नहीं है, फिर भी सदस्यों की ऐसी मांग थी कि बात को और साफ करने के लिए एटोर्नी जनरल को सदन में बुलाया जाए। कानूनी प्रावधान के अनुसार अगर सरकार आवश्यकता महसूस करती तो वह एटोर्नी जनरल को सदन में बुला सकती थी, लेकिन सरकार पर ऐसा दबाव लाने का संसद को कोई अधिकार नहीं था। चर्चा के दौरान बहस में मोरारजीभाई यह कह गए कि संसद अगर सर्वसम्मति से भी ऐसी मांग करती है तब भी मैं एटोर्नी जनरल को सदन में नहीं बुलाऊंगा। स्वाभाविक ही था कि उनके इस कथन को लेकर उनका बड़ा बुरा हाल हुआ। मोरारजीभाई पर आरोप लगाए गए कि वे तानाशाहों की भाषा में बोल रहे हैं। उनका आशय शायद संसद को अपने अधिकारों की कानूनी सीमाएं बताने का रहा हो, लेकिन वे जो बोल गए, उसका तो बिल्कुल विपरीत अर्थ भी लगाया जा सकता था। आखिर में संसद सदस्यों की मांग के आगे झुककर एटोर्नी जनरल को सदन में बुलाना पड़ा। यद्यपि एटोर्नी जनरल ने अपने विचार बताते हुए कहा कि 'अनिवार्य बचत योजना में कुछ असवैधानिक नहीं है।' लेकिन फिर भी मोरारजीभाई को अपने कहने पर पछतावा जरूर हुआ, उनका मानना था कि उनको यह नहीं कहना चाहिए था।

कामराज योजना या साजिश

कामराज योजना के नाम से जानी जाती एक नई व्यवस्था ने देश की राजनीति में बड़ी उथल-पुथल पैदा की। जून, 1963 में तमिलनाडु के मुख्यमंत्री के. कामराज ने एक योजना बनाई। इसके अंतर्गत ऐसी व्यवस्था सोची गई थी कि देश भर में

विभिन्न राज्यों की सरकारों में उच्च पदाधिकारी नेता लोग अपने पदों को छोड़कर पार्टी के संगठन में जुट जाएं। जिससे पार्टी का कमजोर होता जा रहा संगठन मजबूत हो सकेगा। कामराज स्वयं अपना मुख्यमंत्री पद छोड़कर प्रदेश कांग्रेस का काम करना चाहते थे। इस तरह कामराज योजना अस्तित्व में आई।

इस योजना को केंद्र में कुछ नेताओं पर लागू करने का काम नेहरू ने ले लिया। उनकी इच्छानुसार केंद्रीय मंत्रिपरिषद से मोरारजीभाई देसाई और लालबहादुर शास्त्री ने त्यागपत्र दे दिया। योजना का उद्देश्य देखते हुए तो मोरारजीभाई को पार्टी अध्यक्ष बनाना चाहिए था, लेकिन वह स्थान कामराज को दिया गया। कुछ समय पश्चात नेहरू ने लालबहादुर शास्त्री को मंत्रिमंडल में वापस ले लिया, किंतु मोरारजीभाई को मंत्रिमंडल से हटाने के बाद उनको कोई काम नहीं दिया गया। मोरारजीभाई के दिमाग में यह विचार आया कि यह नेहरू की एक सोची समझी साजिश थी। उनको लगा कि नेहरू ऐसी स्थिति का निर्माण करना चाहते हैं जिससे मोरारजीभाई किसी भी सूरत में उनके बाद प्रधानमंत्री न बन पाएं। सदन में कांग्रेस संसदीय दल के उपनेता के चयन के समय और अब कामराज योजना के अंतर्गत मौका देखकर मोरारजीभाई को दल और सरकार दोनों जगह से हटाकर दूसरे महत्वपूर्ण सम्मान से वंचित किया गया। नेहरू चाहते थे कि उनके बाद उनकी पुत्री इंदिरा को प्रधानमंत्री का पद मिले।

कोई आठ महीने के बाद नेहरू द्वारा भेजे गए दो-तीन सज्जनों ने मोरारजीभाई से कहा, "नेहरू चाहते हैं कि आप मंत्रिमंडल में शामिल हो जाएं। लेकिन इसके लिए आपको आश्वासन देना होगा कि आप दोनों के बीच कभी किसी मुद्दे को लेकर अगर कोई मतभेद होता है तो आपको उनके निर्णय पर अमल करना होगा।" यह विचित्र बात थी। इतने वर्षों तक साथ साथ काम करने पर कभी ऐसी कोई परिस्थिति पैदा नहीं हुई थी, अब यह विचार यकायक क्यों उठा ? लेकिन, मोरारजीभाई ने अपने स्वभावगत तरीके से स्पष्ट भाषा में कह दिया, "मैं कोई आश्वासन नहीं दे सकता। कोई भी शरती-व्यवस्था मुझे स्वीकार्य नहीं है और यह मेरे आत्मसम्मान का भी प्रश्न है, तथा आत्मसम्मान की कीमत पर मुझे कोई स्थान नहीं चाहिए।"

नेहरू के बाद शास्त्री

इस घटना के कोई दो महीने बाद 27 मई 1964 को जवाहरलाल नेहरू का निधन हो गया। सूचना मिलते ही मोरारजीभाई नेहरू के आवास पर पहुंच गए। नेतागण सोचने लगे कि अब क्या होगा ? नेहरू के बाद क्या इंतजाम किया जाए ? नेहरू जी के आवास पर व्यवस्था का अभाव था। मृतदेह की देखरेख भी ठीक ढंग से नहीं हो रही थी इसलिए मोरारजीभाई आवश्यक व्यवस्था करवाने लगे, तब फटाफट

सारी व्यवस्था हो सकी। इसे देखकर कई लोग आलोचना करने लगे कि नेहरू का स्थान पाने के लिए मोरारजीभाई यह सब कर रहे हैं, जब कि मोरारजीभाई का इरादा वहां अव्यवस्था के स्थान पर व्यवस्था करना था। आखिर में किसी को तो यह कार्य करना ही था।

नेहरू के निधन के बाद तत्काल तो उनकी मंत्रिपरिषद में दूसरा स्थान रखने वाले गुलजारी लाल नंदा को अस्थायी प्रधानमंत्री बनाया गया। उसके बाद जब नए नेता के चुनाव का समय आया तब मोरारजीभाई ने अपनी राय जताई कि नेता का चयन कांग्रेस संसदीय दल पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

उस समय कामराज, संजीव रेड्डी, निजलिंगप्पा, एस.के. पाटिल आदि एक सिंडीकेट ऐसी साजिश रच रही थी जिससे मोरारजीभाई प्रधानमंत्री का पद प्राप्त न कर सकें। कांग्रेस की कार्यकारिणी ने मोरारजीभाई की आपत्ति होने पर भी बहुमत से निर्णय लिया कि नेता के चयन के बारे में सदस्यों का सरसरी मत कांग्रेस अध्यक्ष कामराज जान लें। अतः कामराज ने संसद सदस्यों से व्यक्तिगत तौर पर मुलाकात करके घोषणा की कि बहुमत लालबहादुर शास्त्री के पक्ष में है। मोरारजीभाई ने कहा कि मुझे इस पर विश्वास नहीं है, फिर भी उन्होंने जनमत का आदर किया गया। लाल बहादुर शास्त्री निर्विरोध नेता चुन लिए गए तथा प्रधानमंत्री बने।

सिंडिकेट किसी ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री बनाना चाहती थी जो उसके प्रभाव में रहे, हां में हां मिलाए। मोरारजीभाई तो किसी के कहने में आनेवाले स्वभाव के नहीं थे, इसलिए सिंडिकेट ने लालबहादुर शास्त्री को प्रधानमंत्री बनाया।

शास्त्री के बाद इंदिरा गांधी

सितंबर, 1965 में पाकिस्तान ने भारत पर हमला बोल दिया लेकिन भारतीय सेना ने पाकिस्तानी सेना को मार भगाया। इसके बाद रूस के आग्रह वश द्विपक्षीय वार्ता के द्वारा किसी समझौते पर पहुंचने के लिए शास्त्री जी को रूस के ताशकंद नगर जाना पड़ा। वार्ता के कारण, युद्ध के दौरान हमारी सेना पाकिस्तान से जीता हुआ हमारा ही मूल क्षेत्र पाकिस्तान को सौंपने की स्वीकृति शास्त्री जी को मजबूर होकर देनी पड़ी। भारत की जनता पर इसका प्रभाव जानने के लिए उन्होंने दिल्ली फोन किया, तो उन्हें पता चला कि भारत की जनता उनके द्वारा किए गए समझौते से नाराज है। उसी रात को, अर्थात 10 जनवरी 1966 को शास्त्री जी को दिल का दौरा पड़ा और ताशकंद में ही उनका निधन हो गया। शास्त्री जी के स्वर्गवास को लेकर जनता में तरह तरह की शंका-कुशंकाएं फैलने लगीं, लेकिन मोरारजीभाई देसाई शास्त्री जी के निधन को प्राकृतिक मौत ही समझते थे।

डेढ़ वर्ष के अंतराल के बाद पुनः प्रधानमंत्री के चयन का प्रसंग उपस्थित

हुआ। गुलजारी लाल नंदा को पुनः अस्थायी प्रधानमंत्री की शपथ दिलाई गई। अब की बार भी सिंडिकेट ने मोरारजीभाई को प्रधानमंत्री पद तक आते हुए रोकने के प्रयत्न शुरू किए। उनको दूर रखने के लिए इस बार सिंडिकेट ने इंदिरा गांधी को तैयार किया क्योंकि मोरारजीभाई के मुकाबले और कोई चुनाव जीत सके ऐसी संभावना नहीं दिखाई दे रही थी। इस बार मोरारजीभाई ने मात्र सबकी राय जानने के तरीके के बदले बाकायदा चुनाव कराने पर जोर दिया और चुनाव के लिए उन्होंने अपनी उम्मीदवारी की। कामराज ने राज्यों के मुख्यमंत्रियों को साथ लेकर संसद सदस्यों में खूब प्रचार किया। पराजय की पूरी संभावना होने के बावजूद भी मोरारजीभाई स्पर्द्धा से हटे नहीं, उन्होंने किसी से सौदेबाजी भी नहीं की और न ही प्रचार किया। केवल प्रत्येक संसद सदस्य को फोन पर इतना ही बताया कि किसी के भी दबाव में आए बिना उपयुक्त उम्मीदवार को अपना मत दें। चुनाव में इंदिरा गांधी भारी बहुमत से कांग्रेस संसदीय दल की नेता चुनी गईं और प्रधानमंत्री बनीं।

मार्च, 1966 में एक प्रशासन सुधार आयोग (एड्मिनीस्ट्रेटिव रिफोर्म्स कमीशन) का गठन किया गया, तथा मोरारजीभाई को उसका अध्यक्ष बनाया गया। उनकी इच्छा थी कि आयोग का कार्य 1967 के अंत तक कर लिया जाए। लेकिन सदस्यों की धारणा थी कि यह कार्य कम से कम तीन वर्ष तक तो चलेगा ही। मोरारजीभाई ने उनको समझाया कि आयोग हर पहलू पर बारीकी से विचार नहीं करेगा। मोटी मोटी बातों को लेकर मुख्य नियम बनाए जाएं। अगर ऐसा करेंगे तो 1967 के अंत तक आयोग अपनी रिपोर्ट पेश कर सकेगा। आयोग ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट जो दी, उसमें लोकपाल और लोकायुक्त की नियुक्ति के सुझाव की सिफारिश की थी। जिसके अंतर्गत लोकपाल मंत्रियों के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों की जांच कर सकता था तो लोकायुक्त सचिवों के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों की जांच कर सकता था। इस तरह का प्रस्ताव आयोग ने रखा।

1967 में कांग्रेस को केवल 21 सीटों का ही बहुमत प्राप्त हुआ। मोरारजीभाई संसद के लिए चुने गए थे। नेता के चयन का प्रश्न आया तो उन्होंने पुनः अपनी उम्मीदवारी की, दोबारा इंदिरा और मोरारजीभाई प्रधानमंत्री के चुनाव में आमने सामने आए, लेकिन अब की बार कांग्रेस कमजोर हो गई थी। कामराज भी इंदिरा के प्रबल समर्थक नहीं रहे थे। उन्होंने इस बात को भी स्वीकार किया कि उन्होंने पिछली बार मोरारजीभाई के साथ अन्याय किया था। लेकिन इस वार एक नई समस्या खड़ी हो गई। इंदिरा गांधी के कुछ समर्थकों ने कामराज को बताया कि अगर आप इंदिरा जी के प्रचार के लिए आगे नहीं आएंगे, और इंदिरा जी नहीं चुनी जाएंगी तो कांग्रेस के 40-50 संसद सदस्य कांग्रेस पार्टी छोड़ देंगे। मोरारजीभाई को भी लगा कि अगर कांग्रेस टूटती है तो ठीक नहीं है, ऐसा नहीं होने दिगा

जाएगा। अतः वे स्पर्धा से हट गए तथा इंदिरा गांधी निर्विवाद रूप से चुन ली गईं।

मोरारजीभाई की आवश्यकता अनुभव की गई

1967 के चुनाव कांग्रेस के लिए मुसीबत रूप प्रमाणित हुए। कई राज्यों में उसने अपना बहुमत गंवाया। संसद में भी बहुत कम बहुमत हासिल हुआ था। ऐसे समय में मोरारजीभाई जैसे सक्षम व्यक्ति की केंद्रीय मंत्रिपरिषद में आवश्यकता थी। इंदिरा गांधी और कामराज के आग्रह से उन्होंने उप-प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री का पद भार केंद्रीय मंत्रिमंडल में संभाला।

कांग्रेस की कार्यकारिणी में बैंकों के राष्ट्रीयकरण की मांग उठी, तब मोरारजीभाई ने कहा कि इससे देश को कोई खास लाभ नहीं होगा। उलटा करोड़ों रुपए का मुआवजा देना पड़ेगा तथा देश का अर्थतंत्र लाल फीताशाही के चक्कर में फंस जाएगा। उसके बदले बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण अधिक कारगर होगा। इसलिए उस समय बैंकों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव छोड़ दिया गया, और उसके बदले सामाजिक नियंत्रण स्वीकार किया गया।

कार्यकारिणी में एक बार देशी रियासतों के राजाओं को भारत संघ में शामिल होने के बदले दिए जाने वाले उनके विशेषाधिकारों को वापस लिए जाने की मांग उठी। मोरारजीभाई का विचार था कि इससे उनको दिए गए वचन भंग होंगे और हमारी प्रतिष्ठा पर भी उलटा असर पड़ेगा। इसके लिए जिस तरह सरदार साहब ने उनको समझा कर उनकी रियासतें लेने का कार्य किया था, उसी तरह समझ बूझ से यह काम भी किया जा सकता है। इससे कार्यकारिणी ने प्रिवी पर्स बंद करने की बात छोड़ दी, लेकिन राजाओं के विशेषाधिकारों को वापिस लेने के संबंध में प्रस्ताव पारित किया गया।

कांग्रेस का विभाजन

3 मई 1969 को देश के राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन का निधन हो गया, इससे नए राष्ट्रपति के चुनाव का प्रश्न उपस्थित हुआ। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी उस पद पर जगजीवनराम को लाना चाहती थीं। लेकिन कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड ने बहुमत से उस स्थान के लिए संजीव रेड्डी को उम्मीदवार बनाया इसलिए प्रधानमंत्री नाराज हो गईं। उनका कहना था कि इसमें मेरा अपमान है, जिससे इसका नतीजा गंभीर हो सकता है।

16 जुलाई को इंदिरा गांधी ने मोरारजीभाई देसाई को एक पत्र लिखकर सूचित किया कि आपको सौंपा गया वित्त मंत्रालय मैंने अपने हाथ में ले लिया है। आपको दूसरा कौन-सा मंत्रालय दिया जाए उसके बारे में हम बाद में चर्चा करके

निर्णय करेंगे, इस दौरान आप उप-प्रधानमंत्री के पद पर बने रहेंगे। अपने साथ किसी तरह का विचार-विमर्श किए बिना ऐसा एक पक्षीय निर्णय लेने का अपमान भरा तरीका देखकर मोरारजीभाई इंदिरा गांधी का इरादा भांप गए। उन्होंने तुरंत अपना त्यागपत्र भेज दिया। 19 जुलाई को प्रधानमंत्री ने मोरारजीभाई का त्यागपत्र स्वीकार करने के लिए राष्ट्रपति से सिफारिश की और उसी दिन चौदह बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा कर दी गई।

इंदिरा गांधी ने 22 जुलाई को राष्ट्रपति के चुनाव के लिए संजीव रेड्डी के नामांकन पत्र पर हस्ताक्षर करके अपना समर्थन व्यक्त किया तो दूसरी ओर उन्होंने वी.वी. गिरी को भी अपना समर्थन दिया तथा अंतरात्मा की आवाज के अनुसार मतदान करने के लिए संसद सदस्यों से अनुरोध भी किया, परिणामस्वरूप कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड द्वारा समर्थित संजीव रेड्डी की पराजय हुई और वी.वी. गिरी विजयी रहे। इससे कांग्रेस कार्यकारिणी ने प्रस्ताव पारित करके अनुशासन भंग करने के कारण इंदिरा गांधी को कांग्रेस की सदस्यता से हटा दिया।

तो दूसरी तरफ इंदिरा गांधी ने कांग्रेस संसदीय दल की बैठक बुलाई। उस बैठक में इंदिरा गांधी के प्रति विश्वास व्यक्त किया गया। इस प्रकार कांग्रेसी संसद सदस्यों में विभाजन हुआ, जिसमें गिरि के पक्षधर संसद सदस्यों की संख्या बड़ी थी जबकि संजीव रेड्डी के समर्थक अल्पमत में थे। अब कांग्रेस के दोनों गुटों को अलग अलग नाम दिए गए, इंदिरा के नेतृत्व वाले गुट को शासक कांग्रेस (अर्थात कांग्रेस-आई) और दूसरा गुट संगठन कांग्रेस (कांग्रेस-ओ) के नाम से जाना जाने लगा। संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर मोरारजीभाई देसाई का चयन हुआ तथा लोकसभा और राज्यसभा में उन गुटों के नेता के पद पर क्रमशः राम सुभग सिंह और श्याम नंदन मिश्र की नियुक्ति हुई।

कांग्रेस के विभाजन के बाद लोकसभा में शासक कांग्रेस बहुमत में नहीं था पर भारतीय साम्यवादी पार्टी (सी.पी.आई.) के समर्थन से उसका काम तो चला, लेकिन उस कमजोर हालत से छुटकारा पाने के लिए इंदिरा गांधी ने फरवरी, 1971 में चुनाव करवाया। इस चुनाव में शासक कांग्रेस को 350 सीटें और संगठन कांग्रेस को केवल 16 सीटें मिलीं। उस समय पूर्वी पाकिस्तान में उठे सरकार विरोधी आंदोलन को भारत सरकार ने सहायता दी, जिसके कारण आंदोलनकारी विजयी हुए और आजाद बंगला देश अस्तित्व में आया। इसके कारण इंदिरा गांधी को अभूतपूर्व और असाधारण लोकप्रियता हासिल हुई। लोकसभा के चुनाव में शासक दल को मिली विजय इस लोकप्रियता का परिणाम थी।

विधानसभा भंग कराने के लिए अनशन

1969 के कांग्रेस विभाजन के बाद गुजरात विधानसभा में संगठन कांग्रेस बहुमत

में थी, इसलिए उस पार्टी की वहां सरकार थी। 1971 में संसद में बहुमत प्राप्त करने के बाद इंदिरा ने गुजरात में संगठन कांग्रेस की सरकार को भंग किया और विधानसभा का विसर्जन करके नए चुनाव करवाए। नए चुनाव में गुजरात विधानसभा की 168 सीटों में से शासक कांग्रेस को 100 सीटें मिलीं। मुख्यमंत्री के पद पर तत्कालीन केंद्रीय मंत्री घनश्याम भाई ओझा को भेजा गया, लेकिन एक ही वर्ष में चीमनभाई पटेल ने उनके विरुद्ध विद्रोह किया और सरकार के विरुद्ध विधानसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित करवाया। इतना ही नहीं इंदिरा गांधी की इच्छा के विरुद्ध चीमनभाई पटेल विधायक दल के नेता चुने गए, और मुख्यमंत्री भी बन बैठे।

चीमनभाई पटेल के शासन के दौरान आवश्यक सामान का अभाव, ऊंची कीमतें और भ्रष्टाचार के खिलाफ जनमत ने जोर पकड़ा। चीमनभाई को हटाने के लिए छात्रों का व्यापक आंदोलन चला। गुजरात में फैले इस नवनिर्माण आंदोलन को कुचलने के लिए पुलिस ने जगह जगह पर गोलाबारी की जिससे 120 के करीब युवा छात्र मारे गए, परिणामस्वरूप आंदोलन और हिंसक हो गया। इंदिरा गांधी की साजिशों के कारण चीमनभाई पटेल की सरकार गिर गई तथा गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया, किंतु विधानसभा का विसर्जन नहीं किया गया। नवनिर्माण आंदोलन के नेता विधानसभा का विसर्जन चाहते थे, फिर भी विधानसभा का विसर्जन टाला गया। धीरे धीरे विधानसभा के विसर्जन की मांग बढ़ती गई, आंदोलन अधिक तीव्र और हिंसक होता गया।

आंदोलन में हिंसा को रोकने तथा विधानसभा को भंग करने के लिए मोरारजीभाई ने 11 मार्च 1974 से अनशन शुरू किया। आखिर सरकार ने 15 मार्च को विधानसभा का विसर्जन करने के निर्णय की घोषणा की और मोरारजीभाई ने अनशन समाप्त किया।

चुनाव कराने के लिए फिर अनशन

विधानसभा के विसर्जन के तुरंत बाद चुनाव कराने चाहिए थे। सरकार को हटाने के शुरू में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था जिसे छह महीने बाद सितंबर में और छह महीने के लिए बढ़ाया गया।

इस दौरान गुजरात में बारिश की कमी के कारण ऐसा भयंकर सूखा पड़ा जैसा पिछले 100 वर्षों में कभी न पड़ा था। मोरारजीभाई को लगा कि ऐसे सूखे से निपटने और जनता की पर्याप्त सहायता करने में राष्ट्रपति शासन अक्षम है। उनके विचार से ऐसी स्थिति में प्रशासन की जिम्मेदारी यथाशीघ्र जनता के प्रतिनिधियों को सौंपी जानी चाहिए लेकिन उसके बदले सरकार ने राष्ट्रपति शासन मार्च से और छह महीने आगे बढाने के लिए संसद में प्रस्ताव रखा।

संगठन कांग्रेस ने सरकार के इस निर्णय के विरुद्ध सत्याग्रह चलाने का निर्णय किया तथा एक लोक संघर्ष समिति का गठन किया गया। मोरारजीभाई को आशंका थी कि आंदोलन हिंसक हो सकता है क्योंकि यह भी संभव था कि पुलिस द्वारा आंदोलन को सख्ती से कुचलने के कारण आंदोलन हिंसक हो सकता था। उस संभावना को दूर करने के लिए मोरारजीभाई ने 7 अप्रैल 1975 से दिल्ली में अपने निवास स्थान पर अनशन शुरू किया। परिणामस्वरूप 13 अप्रैल को सरकार ने जून के महीने में चुनाव कराने की घोषणा की और मोरारजीभाई ने अपना अनशन खत्म किया।

गुजरात में जनता मोर्चा

गुजरात में विधानसभा चुनाव लड़ने के लिए संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, समाजवादी पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी ने मिलकर एक गुट—जनता मोर्चे का गठन किया। उस समय पूर्व मुख्यमंत्री चीमनभाई पटेल ने किसान मजदूर लोक पक्ष (किमलोप) का गठन किया था। इससे चुनाव में जनता मोर्चा, शासक कांग्रेस और किमलोप की त्रिपक्षीय जंग छिड़ गई। मई महीने के मध्य में श्री मोरारजीभाई देसाई चुनाव प्रचार के लिए गुजरात के प्रत्येक जिले में गांव गांव घूमे। चमचमाती तेज धूप में और दो-पहर की गर्मियों में उन्होंने सभाओं में भाषण दिए। इस चुनाव में विधानसभा की 181 बैठकों में से 85 सीटें जनता मोर्चा को मिलीं। शासक कांग्रेस को 75, किमलोप को 13 और निर्दलीय प्रत्याशियों को 8 सीटें मिलीं। मोर्चे को बहुमत के लिए 6 सीटें और चाहिए थीं। किमलोप ने मोर्चे को बिना शर्त समर्थन देने का अपना निर्णय राज्यपाल महोदय को बताया, इसलिए राज्यपाल ने मोर्चे के चुने गए विधायक दल के नेता बाबू भाई पटेल को 19 जून को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई।

जिस दिन गुजरात की विधानसभा के नतीजे घोषित किए जा रहे थे, उस दिन अर्थात 12 जनू 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के 1971 के लोकसभा चुनाव को अवैध घोषित ठहराते हुए आगामी छह वर्ष तक चुनाव लड़ने पर रोक लगा दी। इंदिरा गांधी ने हाईकोर्ट के उस निर्णय के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की तथा निर्णय को तीन हफ्ते तक लागू न किए जाने का आदेश प्राप्त किया। इस अवधि के दौरान उनके समर्थकों ने उनको प्रधानमंत्री के पद पर बने रहने के लिए अनुरोध करने वाली बड़ी बड़ी रैलियों का आयोजन किया। दूसरी ओर इंदिरा गांधी पर त्यागपत्र देने के लिए जोर डालने हेतु गैर कम्युनिस्ट पार्टियों ने मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में एक लोक संघर्ष समिति का गठन किया। इस समिति के गठन में जयप्रकाश नारायण ने प्रमुख भूमिका निभाई। दिल्ली के रामलीला मैदान में मोरारजीभाई की अध्यक्षता में आयोजित एक

सार्वजनिक सभा में जयप्रकाश नारायण ने एक यादगार भाषण दिया तथा प्रधानमंत्री के विरोध में शांतिपूर्ण सत्याग्रह शुरू करने के कार्यक्रम की घोषणा की गई।

देश में आपातकाल

दूसरे दिन, अर्थात 25 जून 1975 को सरकार ने आपातकाल की घोषणा की तथा मोरारजीभाई देसाई, जयप्रकाश नारायण एवं विपक्ष के असंख्य नेताओं की गिरफ्तारियां की गईं। समाचारपत्रों पर सख्त सेंसरशिप लगाई गई जिससे वे इन गिरफ्तार लोगों की खबरें न छाप सकें।

26 जून 1975 को तड़के चार बजे जब पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने गई तब मोरारजीभाई को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। देर सबेर ऐसा कुछ होने ही वाला है ऐसा आभास उन्हें हो गया था। उनको और जयप्रकाश जी को गिरफ्तार करके हरियाणा के सोहना नामक पिकनिक स्थान पर ले जाया गया। दोनों को पास पास के बंगले में रखा गया।

सोहना के अपने कारावास से मोरारजीभाई ने हमेशा के लिए पकाए गए खाने का त्याग कर दिया तथा दूध और फल ही लेने का निर्णय किया। अपना यह कारावास उनको घर जैसा ही लग रहा था, वे वहां पर बिल्कुल स्वस्थ चित्त रहते थे। उन्होंने कमरे के बाहर घूमने के लिए इजाजत चाही तो उनसे कहा गया कि शाम सात बजे के बाद इजाजत मिल सकेगी। मोरारजीभाई ने कहा कि मैं कोई चोर नहीं हूं जिससे मुझे अंधेरे में घूमना पड़े। उन्होंने कमरे के अंदर ही सुबह शाम घूमना शुरू किया। सोहना से 30 जुलाई को उन्हें ताओदु स्थान पर ले जाया गया।

आपातकाल 19 महीने तक रहा। उस अवधि के दौरान संसद, न्यायपालिका और समाचारपत्र नाकामयाब बना दिए गए थे। समाचारपत्रों पर सेंसरशिप होने के कारण सही समाचारों को प्रकाशित नहीं किया जा सकता था। जिसके कारण जनता बुरी अफवाहों को भी सही खबर मानने लगी थी। देश विदेश में सरकार की छवि खराब हो चुकी थी।

9

भारत के प्रधानमंत्री

अपनी नष्ट हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के इरादे से इंदिरा गांधी ने 18 जनवरी 1977 को लोकसभा का विसर्जन कर नए चुनावों की घोषणा की। गिरफ्तार किए गए नेताओं और कार्यकर्ताओं को रिहा किया जाने लगा। आपातकाल के दौरान थोपे गए आदेश वापस ले लिए गए। समाचारपत्रों से नियंत्रण दूर होते ही आपातकाल के दौरान किए गए जुल्मों को प्रकाशित किया जाने लगा। मानो पत्रों में ऐसी खबरों का उफान आ गया हो ! पत्रों में एक साथ इस तरह की खबरें प्रकाशित होने के कारण जनता के मानस में इंदिरा गांधी की सरकार के प्रति अपार नफरत और रोष पैदा हुआ।

दूसरी ओर गिरफ्तारी से रिहा हुए नेताओं ने संयुक्त रूप से चुनाव लड़ने के लिए तमाम विपक्षी दलों के एक संगठन का गठन किया। जयप्रकाश नारायण ने नेतृत्व देकर संगठन कांग्रेस, जनसंघ, समाजवादी लोगों और भारतीय क्रांतिदल आदि पार्टियों को एक किया और संयुक्त रूप से चुनाव लड़ा। चुनाव में इस संगठन को अभूतपूर्व सफलता मिली। इस चुनाव में इंदिरा गांधी की पराजय हुई, उनकी पार्टी को संसद में बहुत कम सीटें मिलीं।

संसद में बहुमत पाने वाले इस संगठ्न के नेता के लिए होने वाले चुनाव के तीन दावेदार थे। मोरारजीभाई देसाई, जगजीवन राम और चौधरी चरणसिंह। स्पर्धा रोकने के लिए नेता के चयन की जिम्मेदारी जयप्रकाश जी और आचार्य कृपलानी जी को सौंपी गई। उन दोनों ने मोरारजीभाई का नेता के रूप में चयन किया। 4 मार्च को मोरारजीभाई भारत के चौथे प्रधानमंत्री बने।

विभिन्न विचार सारिणी को मानने वाले गुटों से बने हुए इस दल में एका बनाए रखने के लिए मोरारजीभाई ने यथासंभव कोशिशें कीं। अपनी जानी-मानी दृढ़ता को दरकिनार करके कई बार अत्यंत नरमी से काम लिया। राजनारायण की विचित्रताओं को सहन किया, फिर भी वे इस बहुरंगी मंत्रिपरिषद को 28 माह तक

ही टिका सकें।

जनता पार्टी ने अपनी शासनावधि के दौरान जीवनोपयोगी आवश्यक चीजों के दाम नियंत्रण में रखे। तभी तो आज भी जनता उस सरकार को याद करती है। मोरारजीभाई ने यह भी घोषणा की थी कि हम दस वर्षों के अंदर बेरोजगारी को खत्म कर देंगे। लेकिन उस आश्वासन को कसौटी पर चढ़ने का मौका ही नहीं मिला।

पार्टी टूटी

जनता पार्टी में समाजवादी नेताओं ने पूर्व के जनसंघी सदस्यों के खिलाफ मुद्दा उठाया कि वे जनता पार्टी और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर.एस.एस.) उन दोनों के सदस्य नहीं रह सकते। जनसंघियों की दलील थी कि आर.एस.एस. कोई राजनैतिक पार्टी नहीं है, अपितु एक सांस्कृतिक संगठन ही है, इसलिए वे कोई दो राजनीतिक दलों की सदस्यता नहीं रख रहे हैं। मधु लिमये, जार्ज फर्नांडिज, मृणाल गोरे आदि नेता इसको दोहरी सदस्यता बताकर विरोध कर रहे थे। मोरारजीभाई दूसरी तरफ यानी जनसंघियों के पक्षधर थे। आखिर में इसी लड़ाई के कारण पार्टी टूटी।

संजय गांधी ने मौका देखकर जनता पार्टी को तोड़ने की कार्रवाई शुरू की। उन्होंने राजनारायण से कहा कि आप लोग मोरारजीभाई के अलावा किसी भी दूसरे व्यक्ति को अपना नेता बनाएं तो उसको हम अपना समर्थन देंगे। समाजवादियों और कई सदस्यों ने मांग की कि मोरारजीभाई नेता के पद से हट जाएं और उनके स्थान पर जगजीवन राम को नेता बनाया जाए। मोरारजीभाई ने स्वेच्छा से हटने के बजाय कहा कि पार्टी मेरे विरुद्ध बहुमत से प्रस्ताव पारित करेगी तभी मैं हटूंगा। केवल अमुक लोगों की मांग को लेकर मैं नहीं हट सकता।

इस कलह में चौधरी चरणसिंह ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। समाजवादी मंत्री क्या करेंगे ? इस पर अनिश्चितता बनी हुई थी। इस मौके का लाभ लेकर कांग्रेस संसदीय दल के नेता यशवंत राव चव्हाण ने संसद में सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पेश कर दिया। इस अविश्वास प्रस्ताव पर होने वाला मतदान सरकार के विरुद्ध जाएगा, ऐसी आशंका होने के कारण मोरारजीभाई ने 15 जुलाई 1979 को अपनी मंत्रिपरिषद का त्यागपत्र राष्ट्रपति को दे दिया।

चरणसिंह को कांग्रेस का समर्थन मिला अतः उन्हें राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की शपथ दिलाई। लेकिन यह कांग्रेस का छलावा था, स्थायी समर्थन नहीं था। कांग्रेस ने अपना समर्थन कुछ ही समय में वापस ले लिया, अब चरणसिंह संसद में मुकाबला कर सकें इस स्थिति में नहीं थे, अतः उनके क्षणभंगुर शासन का अंत हो गया। उनकी सिफारिश से राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने संसद को भी भंग कर दिया

तथा नए चुनाव के लिए आदेश दिया। 10 जनवरी 1980 को संपन्न हुए चुनाव में इंदिरा कांग्रेस को संसद में दो-तिहाई सीटें प्राप्त हुईं। फलतः 14 जनवरी को इंदिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री बन गईं।

10

जीवन के अंतिम वर्ष

84 वर्ष के वृद्ध मोरारजी देसाई ने सक्रिय राजनीति से अलग हो जाने का निश्चय उसी दिन कर लिया। एक अमेरिकन पत्रकार हर्श ने अपनी एक किताब में मोरारजीभाई पर आरोप लगाया कि वे अमेरिकन जासूसी संस्था सी.आई.ए. के एजेंट थे। देश-विदेश में इस आरोप के खिलाफ विरोध होने लगा। भारत के लगभग सभी अखबारों एवं सार्वजनिक महानुभावों ने एक आवाज से इस आरोप को बेबुनियाद और झूठा बताया। मोरारजीभाई ने इसके खिलाफ अमेरिका की एक अदालत में मानहानि का मुकदमा दायर किया। बदनामी का आशय मोरारजीभाई प्रमाणित नहीं कर पाए, इसलिए अदालत ने इस मुकदमे को खारिज़ कर दिया।

इसके बाद मोरारजीभाई की जीवन कथा जागृतिमय निवृत्त जीवन की कथा है। वे अपने मुलाकातियों से मिलते, बातें करते, अपनी राय देते, निसर्गोपचार की सलाह देते और शांत जीवन व्यतीत करते।

1988 में 92 वर्ष की आयु के मोरारजीभाई देसाई को पाकिस्तान ने अपने देश का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय सम्मान 'निशाने पाकिस्तान' से सम्मानित किया। उसके चार वर्ष पश्चात सन 1992 में भारत सरकार ने उनको भारत के सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से विभूषित किया।

21 जनवरी 1995 को जीवन के 99 वर्ष पूरे करने जा रहे, मोरारजीभाई देसाई को नेशनल फैडरेशन आफ इंडियन-अमेरिकन एसोसियेशंस की तरफ से 'महात्मा गांधी शांति पुरस्कार' प्रदान कर सम्मानित किया गया। उसी वर्ष जैन सेवा समिति की तरफ से उन्हें ''अहिंसा पुरस्कार' अर्पण किया गया।

28 जनवरी 1995 से उन्होंने अपने जीवन के 100वें वर्ष में प्रवेश किया। देश भर में उनके इस शताब्दी प्रवेश दिवस को प्रेमपूर्वक मनाया गया। उस समय सभी के मन में आशा थी कि उनकी शताब्दी-पूर्ति का भव्य उत्सव मनाने का दुर्लभ अवसर देशवासियों को मिलेगा, लेकिन ऐसा नहीं हो सका।

20 मार्च को फेफड़े में संक्रमण हो जाने एवं दिमाग में खून की गांठ जम जाने से मुंबई के जसलोक अस्पताल में उनको भर्ती कराया गया। वहां पर आखिर तक उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सका, और 10 अप्रैल को दोपहर 1.45 मिनट पर मुंबई में उनका स्वर्गवास हुआ।

दो दिनों के पश्चात 12 अप्रैल को उनकी मृतदेह को वायुसेना के हवाई जहाज द्वारा मुंबई से अहमदाबाद ले जाया गया, उसी दिन शाम को 5.00 बजे साबरमती के तट पर, गांधी जी के आश्रम के समीप, गौशाला की भूमि पर राष्ट्रीय सम्मान के साथ विदा करके उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया। अंततः उनका स्थूल देह पंच महाभूतों से जा मिला।

●●●